श्री सद्गुरु देवाय नमः

श्री परमहंस अद्वैत मत का

मासिक

आनन्द संदेश

श्री आनन्दपुर

जुलाई १९८१

श्री सद्गुरु देवाय नमः

श्री परमहंस अद्वैत मत का

❁ मासिक ❁

आनन्द-सन्देश

अधिपति

श्री परमहंस अद्वैत मत पब्लिकेशन सोसायटी

श्री आनन्दपुर

सम्पादकः—महात्मा शोभान्यानन्द

जुलाई १९८१

वार्षिक शुल्क देश के लिए ९-००

वार्षिक शुल्क विदेश के लिए समुद्री डाक द्वारा २२-००

Foreign Subscription Rates (By Air Mail)

Asia—	45-00
U. K & Europe—	65-00
U. S. A. & CANADA—	75-00

विषय—तालिका

आनन्द-सन्देश * * * * जुलाई १६८१

अनुक्रमणिका * * * पृष्ठ संख्या

प्रकाशक—'श्री परमहंस अद्वैत मत पब्लिकेशन सोसायटी' ने आनन्द प्रिंटिंग प्रेस में छपवा कर आनन्द सन्देश कार्यालय श्री आनन्दपुर जिला गुना (म० प्र०) से प्रकाशित किया।

श्री सद्गुरु देवाय नमः

श्री परमहंस अद्वैत मत का मासिक

आनन्द-सन्देश

श्री आनन्दपुर

जुलाई सन् १९८१ ई० सौर श्रावण सं० २०३८ वि०

वर्ष २९] [अंक ७

अथ

श्री गुरु-वन्दना

॥ दोहा ॥

परम पुरुष गुरुदेव जी, निराकार साकार ।
वन्दौं श्री चरणारविन्द, सुख शान्ति भण्डार ॥
सुखकारी संकटहरण, हैं अनाथ के नाथ ।
युगल श्री चरणार में, सदा नवाऊँ माथ ॥
औषधि सच्चे नाम की, दीन्ही सतगुरु आय ।
महाकठिन भवरोग से, लीन्हा आन बचाय ॥

मोह भरम अज्ञान का, दूर किया अंधकार ।
ऐसे सद्गुरुदेव पर, जाऊँ सद् बलिहार ॥
गुरु समान हितकर नहीं, तीनों लोक मंझार ।
कागा से हंसा किया, दुरमति सकल निवार ॥
ज्यों पारस के परस ते, लौह स्वर्ण हो जाय ।
गुरु-चरणन प्रताप से, जीव ब्रह्म हो जाय ॥
चरणकमल में जीव जो, पल-पल ध्यान लगाय ।
सतगुरु के प्रताप से, अविचल पद्वी पाय ॥
किरपा कर गुरुदेव ने, बख्शी नाम की नाव ।
भवसागर के तरन को, केवल यही उपाव ॥
जो सेवक निसदिन करै, गुरु-मूर्ति का ध्यान ।
तिस को काल-कराल का, कभी न लागै बान ॥
माया नागिन विष भरी, रही जगत लिपटाय ।
गुरु-शरण जिसने गही, वही सेवक बच जाय ॥
सतगुरु किरपा से मिलै, परमारथ का भेव ।
ताते निसदिन कीजिये, गुरु-चरणन की सेव ॥
सतगुरु की भक्ति बिना, थोथा सब व्यवहार ।
जब आवै गुरु-शरण में, तब पावै सुख-सार ॥
सत्संगत प्रताप से, मिटै मोह-अंधकार ।
घट में ही फिर पाइये, मालिक का दीदार ॥

सतगुरु-शब्द हिरदे धरै, करे सदा गुणगान ।
चंचलता मन की मिटै, लागै सहज ध्यान ॥
किस मुख से वर्णन करूं, प्रभो तुम्हरे उपकार ।
निज चरणन में ठौर दे, जीवन दिया संवार ॥
तेरा द्वारा मिल गया, धन्य धन्य मम भाग ।
निसदिन 'दासनदास' का, रहे चरणन अनुराग ॥

इति शुभम्

शुभ सूचना

१. श्रावण सं० २०३८ वि० की संक्रान्ति १६ जुलाई सन् १६८१ ई० गुरुवार को होगी ।
२. श्री व्यासपूजा (गुरु-पूर्णिमा) १७ जुलाई सन् १६८१ ई० शुक्रवार को होगी ।
३. रक्षाबंधन का पर्व १५ अगस्त सन् १६८१ ई० शनिवार को होगा ।
४. भाद्रपद सं० २०३८ वि० की संक्रान्ति १६ अगस्त सन् १६८१ ई० रविवार को होगी ।
५. जन्माष्टमी २३ अगस्त १६८१ ई० रविवार को होगी ।

श्री परमहंस अमृत कथा

॥ दोहा ॥

हाथ जोड़ वन्दन करूं, परमहंस महाराज ।
शरणागत प्रतिपाल हो, सन्तन के सिरताज ॥
श्री गुरु चरण सरोज में, बारम्बार जुहार ।
जिनकी किरपा से मिले, नाम रतन धन सार ॥
एक वचन गुरुदेव का, करता मोह विनाश ।
ज्ञान-भानु की किरण से, अन्तर होत प्रकाश ॥
गुरु-कृपा से जग गई, विमल भक्ति की जोत ।
पाप ताप नाशै सभी, भव-भीति नहीं होत ॥
पर-उपकारी सतगुरु, मंगल मोद निधान ।
रोम-रोम रसना बने, 'दास' करे गुणगान ॥

श्री श्री १०८ श्री परमहंस महाराज जी श्री द्वितीय पादशाही जी के परम पुनीत श्री चरणारविन्दों में श्रद्धापूर्वक बार-बार दण्डवत्-प्रणाम है। आपने संस्कारी एवं अधिकारी जीवों को प्रेम-भक्ति के ऐसे प्याले पिलाये कि वे चकोर की न्याईं आपके श्री मुखचन्द्र के मतवाले बन गये और हर समय आपके श्री दर्शनामृत का पान करके जीवन धन्य करने लगे।

एक बार का वर्णन है कि लक्की मरवत स्थान पर श्री

सद्गुरुदेव महाराज जी [बरामदे में विराजमान थे। रात्रि के लगभग दस बजे का समय था। भक्त साहिबराम जी भी अन्य सेवकों के साथ श्री चरणों में बैठे थे। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने भक्त साहिबराम जी को सम्मुख देख कर प्रवचन-वृष्टि आरम्भ कर दी। जिस स्थान पर भक्त जी बैठे थे, संयोगवश उसी स्थान पर चींटियों के बिल थे। प्रेम-प्यासे चात्रिक भक्त साहिबराम जी श्रीमुख निहारने और श्री वचनामृत का पान करने में ऐसे मग्न थे कि उन्हें चींटियों के काटने का कुछ भी पता न चला। सब सेवक इस प्रतीक्षा में थे कि कब श्री प्रवचन समाप्त हों और श्री सद्गुरुदेव महाराज जी भोग लगायें तथा विश्राम करें, परन्तु वहां तो दृश्य ही कुछ और था। भक्त साहिब राम जी इष्टदेव के प्रेम में तथा श्री सद्गुरुदेव महाराज जी अपने अनन्य प्रेमी की प्रेम-तृषा मिटाने में संलग्न थे। इस प्रकार प्रभात के पांच बज गये; सत्संग का प्रवाह अब भी चल रहा था। भक्त जी के मन की अवस्था उस समय बिल्कुल ऐसी थी जैसी पपीहे की स्वांति-बूंद और भ्रमर की कमल के मिल जाने पर होती है। प्रेम की ऐसी ही अवस्था के विषय में परमसन्त श्री कबीर साहिब जी ने फ़रमाया है:—

॥ दोहा ॥

प्रेम प्रेम सब कोइ कहै, प्रेम न चीन्हे कोय ।
आठ पहर भीना रहै, प्रेम कहावै सोय ॥
प्रेम तो ऐसा कीजिये, जैसे चन्द चकोर ।
घींच टूटि भुइं मां गिरै, चितवै वाही ओर ॥

यह प्रेम की पराकाष्ठा है। भक्त साहिबराम जी के मन में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के प्रति अनन्य प्रेम था। श्री सद्गुरु देव महाराज जी ही उनके सर्वस्व थे। श्री दर्शन करके वे ऐसे प्रेम-विभोर हो जाते कि अपने शरीर की सुधबुध भूल जाते जैसा कि उस रात्रि भी हुआ कि चींटियां उन्हें काटती रहीं, परन्तु वे प्रेम में मग्न अपने इष्टदेव के श्री दर्शन करते रहे; चींटियों की ओर उनका ध्यान तक न गया। प्रेम का नाम लेना तो सहल है, परन्तु इस पथ पर चलना किसी विरले गुरुमुख का ही काम है।

यह स्वाभाविक है कि सेवक यदि इष्टदेव सन्त सद्गुरु की मौज में सर्वस्व समर्पण कर देता है, तो सन्त सद्गुरुदेव भी ऐसे सेवक के प्रत्येक कार्य का भार अपने ऊपर ले लेते हैं। इस बात का प्रमाण भी भक्त साहिबराम जी के जीवन की कुछ घटनाओं से मिलता है।

भक्त साहिबराम जी लक्की मरवत् में रहते थे। एक बार सात दिन का अवकाश लेकर वे श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री दर्शन करने के लिये टेरी गये। अवकाश के बाद उन्हें किसी आवश्यक कार्य से न्यायालय पहुँचना था। अवकाश का समय बीत जाने पर भी श्री सद्गुरु देव महाराज जी ने उन्हें वापस जाने के लिये श्री आज्ञा न दी। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है कि उनका यह नियम था कि वे स्वयं कभी वापस जाने की आज्ञा न मांगते थे। इस प्रकार लगभग बारह दिन बीत गये, तब श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने उन्हें घर जाने की आज्ञा फ़रमाई।

घर पहुँचने पर जब उन्हें न्यायालय का काम याद आया,

तो वे तुरन्त वहां गये और समय पर न पहुँच सकने के कारण न्यायाधीश तथा अन्य कर्मचारियों से क्षमा मांगने लगे। सब यह सुन कर अत्यन्त विस्मित हुये। न्यायाधीश ने कहा—"साहिबराम जी ! आप यह क्या कह रहे हैं ? आप स्वयं तो उस दिन आ कर तथा कार्य करवा कर अपने हस्ताक्षर कर गये हैं, फिर क्षमा किसलिये मांग रहे हैं।" यह कह कर उन्होंने फ़ाइल निकलवाई और कागज़ पर उनके हस्ताक्षर दिखला दिये। यह देखकर भक्त साहिबराम जी ने मन ही मन श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री चरणों में प्रणाम किया। वे वहां से तो चुपचाप घर वापस आ गये, परन्तु घर पहुँच कर उन्होंने जब इस घटना का वर्णन किया कि श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने इस तुच्छ सेवक के कार्य के लिये स्वयं कष्ट उठाया है, तो बात करते-करते वे इतने भाव-विभोर हो गये कि उनकी आँखों से प्रेमाश्रुओं की झड़ी लग गई। महात्मा योगात्मानन्द जी उस समय वहां उपस्थित थे।

दूसरी घटना इस प्रकार है। भक्त साहिबराम जी गिर्दावर क़ानूनगो के पद पर नियुक्त थे। एक बार सराय गम्भीला में डिप्टी कमिश्नर ने निरीक्षण के लिये आना था। भक्त साहिबराम जी अपने बड़े भाई भक्त काशीराम जी (जो कि पटवारी थे) के साथ सराय गम्भीला गये। संयोग से उसी दिन श्री सद्गुरुदेव महाराज जी रेलगाड़ी द्वारा बन्नू की ओर पधार रहे थे। गाड़ी सराय गम्भीला स्टेशन से होकर जाती थी। इस बात का भक्त साहिबराम जी को पता था। चूंकि गाड़ी का समय भी हो रहा था, अतएव भक्त साहिबराम जी अपने भाई भक्त काशीराम जी को यह कह कर कि "मैं थोड़ी देर में आता हूँ", स्टेशन की ओर

चल दिये। जब भक्त जी स्टेशन पर पहुँचे, तो गाड़ी आने में अभी दस मिनट शेष थे। वे गाड़ी की प्रतीक्षा करने लगे। जब गाड़ी स्टेशन पर आकर रुकी, तो श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी के श्री दर्शन करके भक्त जी का हृदय कमल की भांति खिल उठा। उन्होंने श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी को दण्डवत्-वन्दना करने के लिये डिब्बे के अन्दर पांव रखा ही था कि श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी ने प्रेम-प्रवचन आरम्भ कर दिये। गाड़ी सराय गम्भीला से चल पड़ी। यद्यपि डिप्टी कमिश्नर के निरीक्षण के समय भक्त साहिबराम जी का उपस्थित रहना अत्यावश्यक था, परन्तु श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी के श्री दर्शनों की तुलना में उस कार्य को नगण्य समझ कर वे श्री अमृत-प्रवचनों का पान करने में निमग्न हो गये। जब गाड़ी नौरंग स्टेशन पर पहुँची, तो श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी ने फरमाया कि "भक्त जी! अब आप जाओ और अपना कार्य करो।" श्री आज्ञा पा कर भक्त जी गाड़ी से उतरे और तांगे पर सवार होकर पुनः सराय गम्भीला गये। यद्यपि उन्हें काफी देर हो चुकी थी, परन्तु श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी ने वहां कुछ और ही लीला रचाई थी। डिप्टी कमिश्नर ने भक्त काशीराम जी को भक्त साहिबराम जी समझ लिया और उनसे कुछ प्रश्न किये। उनका समुचित उत्तर पाकर उसने उन्हें धन्यवाद दिया और अपना कार्य समाप्त कर के वापस चला गया। सच है, जिसने अपना सब कुछ ही कुल मालिक इष्टदेव सन्त सद्‌गुरु को समर्पित कर दिया हो, तो मालिक भी उसके सब काम स्वयं करते हैं।

कुछ समय बाद श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी की कालाबाग में आश्रम बनवाने की मौज उठी। आपने श्री स्वामी वेअन्तानन्द जी

महाराज तथा भक्त साहिबराम जी को कालाबाग़ जाने के लिए फ़रमाया। भक्त जी घर गए तो क्या देखते हैं कि लड़के की स्थिति गम्भीर है और कई सम्बन्धी घर में एकत्र हैं। उन्होंने सब को धीरज देते हुए कहा कि मैं श्री आज्ञानुसार श्री दरबार की सेवा के कार्य से बाहर जा रहा हूँ। आप लोग इसका भलीभाँति उपचार कराएँ, आगे जैसी श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की मौज। यह कह कर वे लक्की के रेल्वे स्टेशन की ओर चल दिए। अभी वे स्टेशन पर पहुँचे ही थे कि एक सम्बन्धी ने आकर सूचना दी कि आप का लड़का अन्तिम श्वासों पर है। उन्होंने उत्तर दिया—आप लोग उसका अच्छी तरह उपचार कराएँ, मैं कालाबाग़ होकर आता हूँ।

इतने में एक अन्य सम्बन्धी ने आकर सूचना दी कि लड़के का देहान्त हो गया है। भक्त साहिबराम जी शान्ति पूर्वक बोले—चेतन आत्मा अपने अंशी में मिल गया। अब केवल पांचभौतिक शरीर का दाह संस्कार ही तो करना है। आप लोग उसका अन्तिम संस्कार कीजिए, मैं सेवा का कार्य करके थोड़ी देर में आता हूँ।

यह कहकर वे श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की श्री आज्ञा-मौज अनुसार कालाबाग़ चले गए। जब वहाँ से भक्त जी वापस आए और सम्बन्धियों ने लड़के के लिए शोक प्रकट किया, तो उन्होंने शांति-पूर्वक उत्तर दिया—जिसकी अमानत थी उसने वापस ले ली; इस में शोक करने की क्या बात है!

कुछ दिन पश्चात् भक्त जी का अपना स्वास्थ्य भी बिगड़ गया। उनके पिता जी ने हकीम कुरेशी साहिब को बुलवाया। हकीम साहिब ने निरीक्षण कर के कहा कि मेरी समझ से तो इन्हें कोई शारीरिक रोग नहीं है। इन्हें तो कोई अन्य ही रोग ज्ञात होता है।

धीरे-धीरे भक्त जी की दशा अत्यधिक शोचनीय हो गई। उन के पिता जी ने श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री चरणों में विनय-पत्र भेजा कि भक्त जी की दशा अत्यन्त चिंताजनक है, उन्हें दर्शन देने की कृपा कीजिए। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की ओर से कृपा-पत्र प्राप्त हुआ जिस में लिखा था कि भक्त जी से पूछिये कि क्या हमारे आने की आवश्यकता है? उनके पिता जी ने उनसे पूछा—बेटा साहिबराम! श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री चरणों में यहाँ कृपा करने के लिए विनय करें? उत्तर में भक्त जी बोले—"श्री सद्गुरुदेव महाराज जी तो हर समय अंग-संग हैं और अब भी हृदय-मन्दिर में विराजमान हो कर मुझे श्री दर्शनों से कृतार्थ कर रहे हैं।" ये शब्द कहते ही उन का शरीर शान्त हो गया।

भक्त जी के पिता जी ने श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री चरणों में तार की कि भक्त साहिबराम जी श्वेत वस्त्रों में साधु थे; उन्हें समाधि दी जाए अथवा उन का दाह संस्कार किया जाए? श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की ओर से तार द्वारा उत्तर मिला कि चेतन आत्मा तो अपने भण्डार में मिल चुका है। अब इस शरीर को समाधि दो अथवा इसका दाह-संस्कार करो, इसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। किन्तु उत्तम यही है कि आदि काल से जो प्रथा चली आ रही है, उसी के अनुसार आप लोग अन्तिम संस्कार करें। श्री आज्ञा पा कर भक्त साहिबराम जी का विधिवत् दाह-संस्कार किया गया।

भक्त साहिबराम जी ने गुरु-भक्ति और गुरु-प्रेम का उच्च आदर्श अन्य प्रेमियों के सम्मुख प्रस्तुत किया। उनके अनन्य प्रेम एवं भक्ति से प्रभावित होकर अधिकाधिक लोग श्री सद्गुरुदेव

महाराज जी के श्रद्धालु बन गये। जहां प्रेमियों का इतना अधिक प्रभाव अन्य लोगों पर पड़े, वहां कुल मालिक सन्त सद्गुरुदेव के आकर्षण से कितनी संस्कारी आत्मायें उनके श्री चरणों में खिंच कर आई होंगी, इसका तो अनुमान लगाना भी कठिन है। परिपूर्ण महापुरुष सन्त सद्गुरुदेव की महिमा अनन्त है। वेद-शास्त्र भी जिन सन्त सद्गुरुदेव की महिमा में 'नेति-नेति' कह कर हार गये; ब्रह्मा, विष्णु, महेश, कवि, कोविद आदि भी जिन की महिमा गा-गा कर थक गये, परन्तु उनकी महिमा का पार न पा सके, उन श्री सद्गुरुदेव की महिमा इस तुच्छ लेखनी द्वारा कैसे व्यक्त की जा सकती है?

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी जिस-जिस स्थान पर कृपा फ़रमाते, सहस्रों व्यक्ति आपके श्रद्धालु एवं प्रेमी बन जाते और ब्रह्मविद्या को प्राप्त करने के लिये श्री चरणों में विनय करते। परिस्थिति तथा देश काल के अनुसार ही महापुरुष प्रत्येक युग में कार्य करते हैं। यदि श्री गुरुनानकदेव जी ने अलौकिक चमत्कार दिखा कर लोगों को धर्म के मार्ग पर चलाया, तो श्री गुरु तेगबहादुर जी ने युग-परिस्थिति अनुसार धर्म के लिये बलिदान देना स्वीकार किया। क्या श्री गुरु तेगबहादुर जी के पास इतनी शक्ति न थी कि उन परिस्थितियों को बदल सकते? नहीं, ऐसा नहीं है। वे तो पूर्ण पुरुष और सब शक्तियों के मालिक थे। वे यदि चाहते तो संकेतमात्र से सब कुछ कर सकते थे, परन्तु उन्होंने ऐसा करना उचित न समझ कर वही किया जो उस समय की परिस्थिति के अनुसार उपयुक्त था। क्या श्री रामचन्द्र जी महाराज के पास इतनी शक्ति नहीं थी कि वे अकेले ही रावण को मार देते? सर्व कला सम्पूर्ण होते हुये भी उन्होंने वानर सेना का सहयोग लिया

तो केवल इसलिये कि उन्होंने उनका उद्धार करना था।

इसी प्रकार श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी ने भी समयानुसार कई अलौकिक चमत्कार दिखाये। एक बार आप ने प्रेमियों की विनय स्वीकार कर टल बुलन्द पधारना स्वीकार किया। टल बुलन्द को कोहाट से होकर मार्ग जाता था। मार्ग में पथरीली भूमि पर संगड़ोबा नाम की एक नदी बहती थी, जिसे पैदल ही पार करना पड़ता था। चूंकि उसमें तीन-चार फुट के लगभग जल था, इसलिये सभी प्रेमी उलझन में पड़ गये कि इसे कैसे पार किया जाये! उन्होंने परस्पर विचार-विमर्श किया कि श्री सद्गुरुदेव महाराज जी को कन्धे पर बिठा कर नदी पार की जाये। सभी प्रेमी अभी यह परामर्श कर ही रहे थे कि उन्हें श्री सद्गुरुदेव महाराज जी नदी के उस पार सैर करते दिखाई दिये। सभी प्रेमियों ने नदी पार की और श्री चरणों में दण्डवत्-प्रणाम करके इस रहस्य को समझाने के लिए विनय की। आपने फरमाया—भाई! हमने भी ऐसे ही नदी पार कर ली है।

महापुरुष तो सर्व शक्तियों के भण्डार होते हैं, परन्तु वे अपनी शक्तियों को गुप्त रूप में प्रयोग में लाते हैं। उनकी संकल्प-शक्ति असम्भव कार्य को भी सम्भव कर देती है। वे अपनी अलौकिक लीलाओं के द्वारा प्रेमियों के हृदयों में कौतूहल का भाव जगा देते हैं। इस प्रकार नदी पर अपनी दिव्य लीला दिखला कर वे "कृष्ण द्वारा आश्रम" टल बुलन्द पहुँचे और वहां पर नित्यप्रति उपदेशामृत की धारा बहा कर संस्कारी एवं अधिकारी आत्माओं को कृतार्थ करने लगे।

आप प्रायः सुरत-शब्द-योग और आचरणमय कार्यवाही के

विषय में ही श्री वचन फ़रमाया करते थे। आपके प्रवचनों में गुरु-भक्ति, वैराग्य, प्रेम तथा आज्ञा-पालन की महत्ता पर अधिक बल दिया जाता था। टल बुलन्द में भक्ति-परमार्थ के रंग में जन-समाज को रंग कर आप टेरी पधारे और वहां सत्संग की अमृतवृष्टि करने लगे।

इधर लक्की मरवत की धरती पावन तीर्थ बनने के लिये विह्वल पुकार कर रही थी। लक्की मरवत् के प्रेमियों तथा भक्तजनों के दिल में प्रेम की तरंगें उठने लगीं। उन सब ने मिल कर विचार किया कि श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री चरणों में विनय की जाये कि वे कुछ दिनों के लिये लक्की मरवत् में ही स्थायी रूप से निवास करें ताकि प्रेमियों की जन्म-जन्मान्तर की तृषित आत्मा को श्री दर्शन करने तथा श्री पावन वचनामृत पान करने का सौभाग्य प्राप्त हो। यह विचार करके सब लोग टेरी पहुँचे और श्री चरणों में इस विषय में विनय की। सन्त महापुरुष तो स्वभाव से ही दयालु होते हैं और उनका इस धराधाम पर अवतरण ही आम जीवों की भलाई के लिये होता है, फिर भला वे उनकी प्रेमपूर्ण विनय स्वीकार क्यों न करते? गोस्वामी तुलसीदास जी ने सन्तों महापुरुषों के करुण स्वभाव के विषय में फ़रमाया है:—

॥ चौपाई ॥

सन्त हृदय नवनीत समाना। कहा कबिन्ह परि कहै न जाना।
निज परिताप द्रवइ नवनीता। पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता॥

श्री रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड

अर्थः—सन्त महापुरुषों का हृदय माखन के समान कोमल

होता है, ऐसा कह कर कवियों ने सन्त महापुरुषों के हृदय की तुलना माखन से कर तो दी, परन्तु वास्तव में उनसे सही बात कहते नहीं बनी; क्योंकि माखन तो तब पिघलता है जब उसे गर्मी मिलती है, परन्तु सन्त महापुरुषों का हृदय तो दूसरों के दुःख को देख कर ही पिघल जाता है।

लक्की मरवत की भूमि की पुकार तथा भक्तों की प्रेमभरी विनय पर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी लक्की पधारे। यहां आपने उपदेशामृत की अजस्रधारा बहा कर इस स्थान को सीमाप्रान्त का मुख्य सत्संग केन्द्र बनाया। यह स्थान बाद में "तीर्थधाम" के नाम से विख्यात हुआ। इसी पुण्य भूमि पर इस सम्प्रदाय के तृतीय एवं चतुर्थ महासम्राट् श्री स्वामी वैराग्यानन्द जी महाराज तथा श्री स्वामी बेअन्त आनन्द जी महाराज ने अवतार लिया और अलौकिक बाल-लीलायें करके दिव्य शक्तियों का परिचय दिया।

लक्की मरवत् में आश्रम-निर्माण का कार्य आरम्भ हुआ। चार दीवारी के मुख्य द्वार पर चौखट लगा दी गई। रात्रि के समय कुछ मनचले पठान उसे उखाड़कर ले गये। प्रातः होने पर भक्तों ने श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री चरणों में निवेदन किया कि दयानिधान क्षमाशील प्रभो! रात के समय न जाने कौन यहाँ से चौखट उखाड़ कर ले गया है, अब क्या किया जाये? आपने नई चौखट लगवाने की आज्ञा दी और फ़रमाया कि "जो लोग चौखट ले गये हैं, उन्हें कुछ मत कहो।" सच है, महापुरुषों का हृदय तो स्वभाव से ही राग-द्वेष से रहित होता है; वे तो सब पर कृपा-दृष्टि रखते हैं। प्रकृति की शक्तियाँ स्वतः ही उनकी सहायता करती हैं।

कुछ दिन पश्चात् उन्हीं पठानों ने, जिन्होंने चौखट चोरी की थी, किसी अन्य स्थान पर चोरी की। उनमें से कुछ पठान पकड़े गये और कुछ भाग गये। चोरी का बहुत-सा सामान, जिनमें वह चौखट भी थी, उनके पास से मिला। जांच-पड़ताल करके चौखट पुनः "कृष्ण-द्वारा आश्रम" पर पहुँचा दी गई। इस मुकद्मे का शीघ्र ही निर्णय हो गया और वे पठान चेतावनी देकर मुक्त कर दिये गये। वे पठान सीधे श्री चरणों में उपस्थित हुये और विनय की कि श्री महाराज जी ! आपकी कृपा से ही हमें छुटकारा मिला है। हम दीनों पर भविष्य में भी अपनी कृपा-दृष्टि बनाये रखें। विधाता ने हमें अपने किये हुये अपराध का काफी दण्ड दे दिया है कि पुलिस हमको हथकड़ी लगाकर ले गई और हमें सबके सामने अपमानित होना पड़ा।

आपने फ़रमाया—यहां तो सब कार्य स्वतः हो रहे हैं। हम किसी को वरदान अथवा शाप नहीं देते। सन्तों के हृदय में किसी के प्रति राग-द्वेष की भावना नहीं होती। तुम लोग सच्चे हृदय से परमात्मा से क्षमा मांग लो। हमने तुम लोगों को क्षमा कर दिया है।

"कृष्ण द्वारा" का निर्माण-कार्य तेज़ी से होने लगा। जिज्ञासुओं की संख्या चूंकि दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी, इस लिये आश्रम में जल की आवश्यकता अनुभव हुई। कुछ भक्तों ने कुएं के निर्माण के लिये श्री चरणों में विनय की। भक्तों को कुआं खोदने की श्री आज्ञा प्रदान कर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी स्वयं सत्संग-प्रचार हेतु डेरा इस्माइलखां पधार गये।

क्रमशः

कल्याण मार्ग

गुरु-ज्ञान का प्रकाश

(१३४)

यदि तुम महापापी हो तो भी निराश मत हो; अनन्य भाव तथा दृढ़ आस्था से परिपूर्ण सन्त सद्गुरु की चरण-शरण ग्रहण करो। ऐसा करने से तुम पापी से पुनीत आत्मा बन जाओगे। किसी मकान के अन्दर कितना ही घना अंधकार क्यों न हो, सूर्य की किरणें पहुँच जाने पर क्या वहां अंधकार ठहर सकता है? नहीं, कदापि नहीं। इसी प्रकार गुरु-ज्ञान की रश्मियां जिस मनुष्य के हृदय में अपना प्रकाश फैला देती हैं, वहां पाप और अज्ञान का अंधकार कभी नहीं ठहर सकता।

व्याख्याः—भगवान् श्री कृष्णचन्द्र जी महाराज अपने श्री मुख से भक्त अर्जुन का साहस बढ़ाते हुये फरमाते हैं:—

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः ।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि ॥

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥
श्रीमद्भगवद्गीता ४/३६-३७

अर्थः—हे अर्जुन ! यदि तू अन्य सब पापियों से भी अधिक पाप करने वाला है, तो भी तू ज्ञानरूप नौका द्वारा निःसन्देह सम्पूर्ण पाप-समुद्र से भलीभांति तर जायेगा; क्योंकि जैसे प्रज्वलित अग्नि ईंधन के ढेर को भस्ममय कर देती है, वैसे ही ज्ञानरूप अग्नि सम्पूर्ण कर्मों को भस्ममय कर देती है।

इसलिये भगवान् श्री कृष्ण अर्जुन को निर्भय होकर शरण में आने और आदेशों का पालन करने का परामर्श देते हैं। उनके वचन हैं:—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्य सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥
श्रीमद्भगवद्गीता ९/३०

अर्थः—यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्यभाव से मेरा भक्त होकर मुझको भजता है तो वह साधु ही मानने योग्य है, क्योंकि वह यथार्थ निश्चय वाला है अर्थात् उसने भलीभांति निश्चय कर लिया है कि मालिक के भजन के समान अन्य कुछ भी नहीं है।

भगवान् के वचन तो अटल हैं, इसमें तो कोई संशय की बात नहीं। मनुष्य स्वयं भी हृदय में विचार करके देखे कि जितनी भी गंदी नालियां श्री गंगा जी में मिल जाती हैं, क्या वे गंगा रूप नहीं हो जातीं ? लोहे की छुरी चाहे ब्राह्मण के घर की हो

अथवा कसाई के घर की, क्या पारस से छूकर दोनों सोना नहीं बन जातीं ? चन्दन के पेड़ के साथ किसी ब्राह्मण के हाथ का लगाया हुआ पेड़ हो अथवा किसी शूद्र के हाथ का, क्या वे दोनों पेड़ चन्दन नहीं बन जाते ? ठीक इसी प्रकार चाहे कोई उच्च कुल का हो अथवा नीच कुल का, सन्तों की चरण-शरण ग्रहण करने से क्या दोनों का उद्धार न हो जायेगा ? नाव का सहारा चाहे कोई उच्च कुल का मनुष्य ले चाहे नीच कुल का, वह तो दोनों को बिना किसी भेदभाव के पार कर देती है। जड़ पदार्थों में जबकि ऐसा गुण है तो क्या चेतनमूर्ति सन्त सत्पुरुष अपनी संगति और पवित्रता का रंग भले-बुरे पर एक सा न चढ़ायेंगे ? ग्रन्थों में ऐसे सहस्रों प्रमाण विद्यमान हैं कि जो व्यक्ति भी सच्ची श्रद्धा से महापुरुषों की शरण में गया, उन्होंने उस पर नाम का रंग चढ़ा कर उसे और से और बना दिया ।

रज्जब साहिब पहले चोर थे, परन्तु जब वे सच्ची भावना से सन्त दादू दयाल जी की शरण में गये तो उन्होंने उसे सम्मान के योग्य बना दिया। उनके अपने ही वचन हैं—

रज्जब गुरु प्रसाद ते मिट गया अंक ललाट का ॥

रज्जब साहिब फ़रमाते हैं कि मेरे मस्तक पर जो बुरा लेख लिखा हुआ था अर्थात् अशुभ कर्मों का जो फल मुझे भोगना था, वह कर्मलेख मेरे गुरुदेव श्री दादू दयाल जी साहिब की कृपा से मिट गया । मेरा भाग्य इस प्रकार बदल गया जैसे कोई शराब से भरा हुआ घड़ा गंगा जी में फूट जाये और वह सब शराब भी गंगा रूप बन जाये । फ़रमान है:—

॥ दोहा ॥

रज्जब घड़ो शराब को, टूट पड़ो बिच गंग।
नाम रूप सब मिट गयो, भयो गंग को गंग॥

ठीक इसी प्रकार जो सौभाग्यशाली जीव अपने मन को सन्त सद्‌गुरु के श्री चरणों में समर्पित कर देते हैं, उनकी कीट और भृंगी की सी दशा हो जाती है, जैसा कि फ़रमान है—

कीट न जानै भृंग को वह करि ले आप समान

कीड़ा तो भृंगी के गुणों को नहीं जानता, परन्तु भृंगी उसे अपना रूप प्रदान कर देता है। इसी प्रकार सेवक शिष्य तो सन्त सद्‌गुरु की शक्ति को नहीं पहचानता, परन्तु सन्त सदगुरु उसे अपने में मिला कर अपना रूप बना लेते हैं। सन्त रविदास जी का कथन है:—

अजामलु पिंगुला लुभतु कुँचरु गए हरि कै पास॥
ऐसे दुरमति निसतरे तू किउ न तरहि रविदास॥
गुरुबाणी, केदारा

फ़रमाते हैं कि अजामिल जैसे पापी भी मालिक की शरण में जाकर भवसागर से पार उतर गए, तो तू क्यों सन्देह करता है?

जिस मार्ग से चल कर एक ब्राह्मण दिल्ली से बम्बई पहुँच सकता है, तो क्या शूद्र उसी मार्ग पर चलकर दिल्ली से बम्बई न पहुँच सकेगा? सत्पुरुषों ने नीचे की वाणी में कितने प्रमाण प्रस्तुत किये हैं:—

सुणि साखी मन जपि पिआर॥
अजामलु उधरिआ कहि एकबार॥

बालमीकै होआ साध संगु ॥
ध्रू कउ मिलिआ हरि निसंग ।।
तेरिआ संता जाचउ चरन रेन ॥
ले मसतकि लावउ करि कृपा देन ॥१॥ रहाउ ॥
गनिका उधरी हरि कहै तोत ॥
गजेन्द्र धिआइओ हरि कीओ मोख ॥
बिप्र सुदामे दालद भंज ॥
रे मन तू भी भजु गोबिंद ॥ २ ॥
बधिकु उधारिओ खमि प्रहार ॥
कुबिजा उधरी अंगुसट धार ॥
बिदरु उधारिओ दासत भाइ ॥
रे मन तू भी हरि धिआई ।। ३ ॥
प्रहलाद रखी हरि पैज आप ।।
बसत्र छीनत द्रोपती रखी लाज ॥
जिनि जिनि सेविआ अंत बार ॥
रे मन सेवि तू परहि पार ॥ ४ ॥
धंनै सेविआ बाल बुधि ॥
त्रिलोचन गुर मिलि भई सिधि ॥
बेणी कउ गुरि कीओ प्रगासु ॥
रे मन तू भी होहि दासु ॥ ५ ॥
जैदेव तिआगिओ अहंमेव ॥
नाई उधरिओ सैनु सेव ॥
मन डीगि न डोलै कहूँ जाइ ॥
मन तू भी तरसहि सरणि पाइ ॥ ६ ॥
जिह अनुग्रह ठाकुरि कीओ आपि ॥

से तैं लीन्हे भगत राखि ॥
तिन का गुणु अवगणु न बीचारिओ कोइ ॥
इह बिधि देखि मनु लगा सेव ॥ ७ ॥
कबीरि धिआइओ एक रंग ॥
नामदेव हरि जीउ बसहि संगि ॥
रविदास धिआए प्रभ अनूप ॥
गुर नानक देव गोविंद रूप ॥ ८ ॥
गुरुवाणी, बसंतु म० ५

ऊपर के शबद में महापुरुषों ने भक्तों की याद दिला कर मन को समझाया है कि तू भी मालिक के नाम से प्रीति कर, क्योंकि मालिक के नाम का सुमिरण करके कितने ही पतित व्यक्ति पावन बन गये और भवसागर से पार उतर गये। सन्तों महापुरुषों की शरण संगत में जाकर उन सब ने कितने उच्चपद को प्राप्त किया कि वे स्वयं तो तर ही गये, अपने साथ और भी अनेक लोगों को भवसागर के पार उतार दिया। उनके क्रिया-कलापों को पढ़-सुन कर मनुष्य का साहस यह बात विचार कर बढ़ जाता है कि नाम की कितनी महानता है कि इसके प्रताप से पापी मनुष्य भी भवसागर के पार हो जाता है। फ़रमान है—

जिस पापी कउ मिलै न ढोई ॥ सरणि आवै तां निरमलु होई ॥
गुरुवाणी, भैरउ म० ५

जिस पापी को पहले कोई निकट नहीं फटकने देता था, मालिक की शरण में जाने से और नाम-सुमिरण के प्रताप से उसकी बुद्धि भी निर्मल हो जाती है।

संसार में देखा जाता है कि एक मनुष्य जो कल तक दीन और

कंगाल था, यदि आज उसको दस लाख की लाटरी निकल आती है, तो सब उसे सेठ-सेठ कहकर पुकारने लगते हैं और सम्मान की दृष्टि से देखने लगते हैं; एक साधारण स्तर का मनुष्य भी यदि चुनाव में जीत जाता है तो सैंकड़ों लोग उसके द्वार पर जाने और उसका आदर करने लगते हैं, फिर यदि किसी के हृदय में मालिक के नाम रूपी रत्न की खान प्रकट हो जाये, तो उसकी महिमा स्थान-स्थान पर क्यों न फैलेगी ? भाई गुरुदास जी ऐसे मनुष्य के विषय में, जिसके हृदय में प्रभु का नाम बस जाता है, फ़रमाते हैं:—

सगल संसार तिह द्वार बिलात है ॥

अर्थात् सारा संसार उसके द्वार पर माथा रगड़ता रहता है । सत्पुरुष ऐसे व्यक्ति की महिमा करते हुये फ़रमाते हैं:—

नीच जाति हरि जपतिआ उतम पदवी पाइ ॥
पूछहु बिदर दासी सुतै किसनु उतरिआ घरि जिसु जाइ ॥
हरि की अकथ कथा सुनहु जन भाइ ॥
जितु सहसा दूख भूख सभ लहि जाइ ॥

गुरुवाणी, सूही म० ४

नीच जाति के लोगों ने भी मालिक के नाम-सुमिरण के प्रताप से उच्च पद प्राप्त किया । सत्पुरुष फ़रमाते हैं कि नाम की महिमा के विषय में पूछना हो तो भक्त विदुर से जा कर पूछो जो कि एक दासी का पुत्र था । किन्तु चूंकि उसमें भक्ति थी, इस लिये भगवान श्री कृष्णचन्द्र जी महाराज ने उसके घर कृपा की । प्रभु की लीला अपरम्पार है । इसके श्रवण करने से मनुष्य के मन से सभी संशय भ्रम दूर हो जाते हैं, मानसिक दुःखों का

नाश हो जाता है और आत्मिक भूख मिट जाती है।

किसी व्यक्ति के घर यदि समय के राजा साहिब अथवा मंत्री महोदय चले जायें, तो लोगों में उसका सम्मान कितना बढ़ जाता है। भगवान् श्री कृष्ण ने भक्त विदुर को भक्तिमान् देखकर उसके घर कृपा फ़रमाई और उसे सम्मान प्रदान किया। सत्पुरुष फ़रमाते हैं:—

रविदासु चमारु उसतति करे हरि कीरति निमख इक गाइ ॥
पतित जाति उतमु भइआ चारि वरन पए पगि आइ ॥
गुरुवाणी, सूही म० ४

सन्त रविदास जी जाति के चमार थे। साधु-संग के प्रताप से उन्होंने ऐसी उच्च पदवी प्राप्त की कि चारों वर्ण के लोग उन के चरणों में झुकते थे। ऐसा ही एक अन्य स्थान पर भी फ़रमान है:—

अब बिप्र परधान तिहि करहि डंडउति
तेरे नाम सरणाइ रविदासु दासा ॥
गुरुवाणी

बड़े-बड़े नामी-गरामी ब्राह्मण भी अब दण्डवत् करते हैं। यह सब हे मालिक! आपके नाम की महिमा है और रविदास आपका दास है।

नाम की महिमा का वर्णन करते हुये सत्पुरुष फ़रमाते हैं:-

नामदेअ प्रीति लगी हरि सेती लोकु छीपा कहै बुलाइ ॥
खत्री ब्राहमण पिठि दे छोडे हरि नामदेउ लीआ मुखि लाइ ॥
गुरुवाणी, सूही म० ४

भक्त नामदेव जी को संसार छीपा-छीपा कह कर बुलाता था,

परन्तु धानिक की भक्ति के प्रताप से भगवान् ने ब्राह्मणों और क्षत्रियों को पीठ देकर नामदेव की ओर मुख कर लिया। यह सब सन्तों के सत्संग का प्रताप है।

संसार का प्रत्येक व्यक्ति उन्नति करना चाहता है। ऊपर के प्रमाणों को दृष्टिगत रख कर तनिक सोचो कि क्या इससे बढ़कर भी कोई उन्नति हो सकती है? संसार के प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति करने का लाभ तो केवल इस लोक तक ही सीमित रहता है, परन्तु सत्संगति का लाभ तो परलोक में भी साथ जाता है। कई बार देखने में आता है कि सांसारिक क्षेत्र में मनुष्य ऊँचे चढ़ कर ऐसा गिरता है कि उसकी उन्नति उसके लिये दुःख, कष्ट, क्लेश आदि का कारण बन जाती है। इसके विपरीत सत्संग में उन्नति करने का सुपरिणाम अन्त तक सुख-आनन्द देने वाला सिद्ध होता है। इसलिये विवेकी पुरुष को चाहिये कि मन की वृत्तियों को सब ओर से मोड़ कर साधु-संग से जोड़े। परमसन्त श्री कबीर साहिब आप बीती वर्णन करते हुये फ़रमाते हैं:—

संतन संगि कबीरा बिगरिओ ॥ सो कबीरु रामै होइ निबरिओ ॥
(गुरुबाणी)

यहां बिगड़ने का अर्थ है बदल जाना अर्थात् साधारण अवस्था से ऊपर उठ कर उच्च पद को प्राप्त कर लेना। एक मनुष्य का राम के स्वरूप में समा जाना और रामरूप कहलाना कितना महान् परिवर्त्तन है।

सत्संगति के अतिरिक्त किस में इतनी सामर्थ्य है जो इस प्रकार का कमाल कर दिखावे? यह सब महिमा सत्संगति की है। सत्पुरुषों का फ़रमान है:—

जिउ पारखाणु नाव चढ़ि तरै ॥ प्राणी गुर चरण लगतु निसतरै ॥
(गुरुबाणी)

जैसे पत्थर नाव का सहारा ले कर नदी से पार हो जाता है, वैसे ही साधारण जीव भी गुरु-चरणों का सहारा लेकर भवसागर के पार हो जाते हैं। इसीलिये ही भगवान् श्री कृष्ण ने भक्त अर्जुन को अपनी शरण में आने का उपदेश दिया और उससे यह प्रण किया कि मैं तुम्हें सब पापों से मुक्त कर दूंगा।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥
श्रीमद्भगवद्गीता १८/६६

अर्थः—सम्पूर्ण धर्मों को अर्थात सम्पूर्ण कर्त्तव्य-कर्मों को मुझ में त्याग कर (अर्पण करके) तू केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान, सर्वाधार परमेश्वर की ही शरण में आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूंगा, तू शोक मत कर।

जैसे कैदी को जेल से मुक्त करने का अधिकार प्रत्येक व्यक्ति को नहीं होता, वैसे ही पापों से मुक्त करने का अधिकार भी प्रत्येक व्यक्ति को नहीं होता। केवल समय के सन्त सद्गुरु को ही यह अधिकार प्राप्त होता है। वे चाहें तो अपनी कृपादृष्टि से महापापी को भी क्षण भर में महापावन बना दें।

एक बार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी महाराज ने भक्त अर्जुन से कहा कि तुम अमुक गांव में से एक ऐसा व्यक्ति खोजकर ले आओ, जो महापापी हो। भक्त अर्जुन वहां गये और एक व्यक्ति को जिसे लोग महापापी कह कर पुकारते थे, ले आये। देखने में तो वह भक्त दिखाई पड़ता था और उसके मस्तक पर तिलक भी

लगा हुआ था, परन्तु चूँकि हर किसी की व्यर्थ ही निंदा करके पापों का बोझ अपने सिर लेता रहता था, अतएव सब लोग उससे घृणा करते थे और उसे महापापी कहा करते थे। किन्तु ज्योंही उसने भगवान् श्री कृष्णचन्द्र जी महाराज के मनोहर दर्शन किये और उनके पावन चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम किया, तो प्रभु ने उस पर कृपादृष्टि डाली और उसे अपना स्वभाव बदलने का आदेश दिया। प्रभु के अमृतमय श्री वचनों को सुन कर उसके मन में मालिक का भय उत्पन्न हुआ और उसने भविष्य में पापकर्म न करने की प्रतिज्ञा की। परिणामस्वरूप उसके मन की सम्पूर्ण कालिमा धुल गई, उसका हृदय दर्पण की न्याईं निर्मल हो गया तथा उसकी वाणी नम्र और मधुर हो गई। अभिप्राय यह कि वह और से और हो गया। सत्पुरुषों ने सत्य ही कहा है:—

संत कृपाल कृपा जे करै ॥ नानक संत संगि निंदकु भी तरै ॥
गुरुवाणी, गउड़ी सुखमनी म० ५

दो-चार दिन के उपरान्त भगवान् श्रीकृष्ण ने फिर एक बार भक्त अर्जुन को उसी गांव में भेज कर कहा कि अब की बार किसी धर्मात्मा पुरुष को खोज कर ले आओ। भक्त अर्जुन वहां गये और गांव वालों से पूछा कि गांव में धर्मात्मा पुरुष कौन है ? ग्रामवासियों ने फिर उसी मनुष्य की ओर संकेत करते हुये कहा कि दो-चार दिनों के भीतर इस में ऐसा परिवर्तन आ गया है कि अब यह महापापी से महापावन बन गया है। भक्त अर्जुन उसी व्यक्ति को पुनः भगवान् के पास ले गये। तब श्री भगवान् ने फ़रमाया कि देखो अर्जुन ! किसी पर तो सत्संग का रंग कई-कई बर्षों तक नहीं चढ़ता और किसी पर एक पल में ही

चढ़ जाता है।

सत्य है—भगवान् की महिमा ही निराली है। वे जो चाहें क्षणमात्र में कर दें। सत्पुरुषों का फ़रमान है:—

खिन महि नीच कीट कउ राज ॥ पारब्रहम गरीब निवाज ॥
गुरुबाणी, गउड़ी सुखमनी म० ५

पारब्रह्म परमेश्वर तो सदा ही गरीब-निवाज़ हैं। वे चाहें तो एक पल में साधारण मनुष्य को राजा बना दें। उनकी महिमा का कोई अन्त नहीं पा सकता।

श्री गुरु नानकदेव जी भ्रमण करते हुये एक दिन किसी किसान के खेत पर चले गये। उसने अत्यन्त प्रेम से उनकी सेवा की। बैठने को घास-फूस का आसन बिछा दिया, दौड़ कर मीठा और साफ जल कुएं से भर लाया तथा खेत में से हरे-हरे चने और मीठी गाजरें ला कर भेंट कीं। फिर हाथ जोड़ कर विनय की कि यदि आप आज्ञा दें तो दौड़ कर घर जाऊँ और आपके आराम करने को लेफ़-तुलाई और खाने-पीने के लिए भोजन, दूध, दही आदि ले आऊँ। श्री गुरु नानकदेव जी उसकी सच्ची श्रद्धा भावना देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और फ़रमाया—

सथर तेरा लेफ निहाई भाव तेरा पकवान ॥
नानक सिफती रजिआ बैठो तुम सुलतान ॥

फ़रमाया कि तुमने जो हमारा आदर किया है और श्रद्धा-पूर्वक घास-फूस का आसन बिछाया है, हमारे लिये यही लेफ़ और तुलाई है और तुम्हारी सच्ची भावना ही श्रेष्ठ और उत्तम भोजन है। हमारा आशीर्वाद है कि तुम राजा के पद पर आसीन

होकर राज्य-सुख भोगो।

विधाता के खेल कि उस दिन किसान ने ज्योंही नगर-द्वार के भीतर पग रखा कि उसे राज-दरबारी अत्यन्त सम्मानपूर्वक राजा के पास ले गये। उस देश का राजा मृत्यु-शय्या पर पड़ा था और उसकी कोई सन्तान नहीं थी जिसे वह राज्य का उत्तराधिकारी घोषित करता। उसने सोच-विचार कर दरबारियों को यह आदेश देकर नगर-द्वार पर भेजा कि आप लोगों को जो भी पहला व्यक्ति नगर के भीतर आता हुआ मिले, उसे सम्मानपूर्वक मेरे पास ले आओ। इसी आदेशानुसार दरबारी लोग नगर-द्वार पर खड़े थे कि वह किसान, जो कि घर वापस लौट रहा था, उन्हें मिला। वे राजा की आज्ञानुसार उस किसान को राजा के पास ले गये। उस किसान ने सिर झुका कर राजा को प्रणाम किया। राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसे राज्य का उत्तराधिकारी बना दिया।

यह सब सन्तों की कृपा का फल है। सन्त सत्पुरुषों के चरणों में प्रकृति की सब शक्तियां कर जोड़े खड़ी रहती हैं। वे जिसे चाहें लोक-परलोक का सम्मान बख्श दें। तभी तो सत्पुरुषों ने फ़रमाया है—

चारि पदारथ जे को मागै ॥ साधजना की सेवा लागै ॥

गुरुबाणी, गउड़ी सुखमनी म० ५

श्री गुरु अर्जुनदेव जी महाराज फ़रमाते हैं कि चारों पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) प्राप्त करने की जिसे अभिलाषा हो, वह समय के सन्त सद्‌गुरु की प्राणपन से सेवा करे तथा उनकी श्री आज्ञा-मौज में चल कर उनकी प्रसन्नता प्राप्त करे। उनकी कृपा से उसे समय पर सब कुछ मिल जायेगा।

अभिप्राय यह कि समय के सन्त सद्गुरु जो चाहें कर सकते हैं; प्रकृति की ओर से उन्हें पूर्ण अधिकार प्राप्त हैं। इसीलिये ऊपर के श्री वचन में फ़रमान है कि ऐ मनुष्य ! यदि तुम महापापी हो तो भी मालिक के द्वार से निराश मत हो। दृढ़ विश्वास के साथ समय के सन्त सद्गुरु की भक्ति और सेवा करो। इससे तुम्हारा अवश्यमेव उद्धार होगा, इसमें तनिक भी संशय नहीं है।

अतएव हमारा कर्त्तव्य है कि हम अपने इष्टदेव सन्त सद्गुरु की सच्ची श्रद्धा-भावना से सेवा करते हुये उनकी श्री आज्ञा-मौज अनुसार जीवन को चलायें ताकि हमारा लोक-परलोक संवर जाये।

उपदेश

स्वरः—सुमिरा प्रभु का न मीठा नाम......॥

टेकः—स्वांस स्वांस जप प्रभु का नाम।
पी ले भर भर नाम के जाम ॥

१—जन्म है तेरा बड़ा अनमोल,
प्राणी दिल में अपने तोल।
देते तुझे सदा सन्त पैगाम ॥

२—नाम का चलता है जब जादू,
हो जाये मन का भूत भी काबू ।
बन के हमेशा रहता गुलाम ॥

३—नाम में गर तू सुरति लगाये,
भव से सहजे ही तर जाये।
पाये फिर तू अविचल धाम ॥

४—रीझेंगे प्रभु सच्ची लगन से,
भरेंगे झोली भक्ति-धन से ।
होगा 'दासा' तू कृतकाम ॥

सदुपदेश

संसार के प्रत्येक प्राणी की हार्दिक अभिलाषा यही है कि उसे शाश्वत् सुख और परम शान्ति की प्राप्ति हो। ऐसा तो संसार में कोई भी न मिलेगा जो दुःख की इच्छा रखता हो। इस सुख-शान्ति की इच्छा को दृष्टिगत रखकर ही मनुष्य पुरुषार्थ करता है, परन्तु देखने में प्रायः यही आता है कि सुखी होने की अपेक्षा आम संसारी मनुष्य दुःख की दलदल में और अधिक धंसता जाता है। योगीश्वर प्रबुद्ध जी भी इसी बात की पुष्टि कर रहे हैं:—

कर्माण्यारभमाणानां दुःखहत्यै सुखाय च ।
पश्येत पाकविपर्यासं मिथुनीचारिणां नृणाम ॥

श्रीमद्भागवत ११/३/१८

अर्थ:—योगीश्वर प्रबुद्ध जी राजा निमि के प्रति उपदेश करते हुये कथन करते हैं कि आम संसारी मनुष्य सुख की प्राप्ति और दुःख की निवृत्ति के लिये ही सब कर्म करते हैं, परन्तु प्रायः देखने में यही आता है कि उनके कर्मों का फल विपरीत होता जाता है अर्थात् वे सुख के स्थान पर दुःख ही पाते हैं और दुःख-निवृत्ति के स्थान पर दुःख दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जाता है।

प्रश्न उठता है कि जब मनुष्य की इच्छा सुख-प्राप्ति की है और वह पुरुषार्थ भी सुख की प्राप्ति के लिये ही करता है, तो फिर उसे सुख की प्राप्ति क्यों नहीं होती? इसके उत्तर में

सत्पुरुषों का कथन है कि मनुष्य की खोज गलत है। आम संसारी मनुष्य सुख-शान्ति की खोज मायिक पदार्थों में करता है। वह यह सोचता है कि जितने अधिक जागतिक पदार्थ उसके पास होंगे, उतना ही अधिक उसे सुख मिलेगा। बेचारा अबोध मनुष्य यह नहीं समझता कि इन मायिक पदार्थों का प्रभाव दुःखरूप है, सुखरूप नहीं। जब इन पदार्थों में सुख है ही नहीं, तो फिर मनुष्य को प्राप्त क्योंकर हो सकता है ?

सत्पुरुषों का कथन है कि मनुष्य की सुरति के अन्दर चुम्बकीय शक्ति होती है। सुरति जिस वस्तु के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ती है, उसका प्रभाव अपने अन्दर खींच लेती है। चूंकि माया तथा माया के पदार्थों में दुःख और अशान्ति भरी हुई है, अतएव जब मनुष्य अपनी सुरति को इन पदार्थों में लगाता है, तो उसे दुःख और अशान्ति की ही प्राप्ति होती है। जब मनुष्य की सुरति बाह्य जागतिक पदार्थों के साथ जुड़ी रहती है, तो उसे बहिर्मुखी सुरति कहते हैं। सुरति जब तक बहिर्मुखी रहेगी, तब तक मनुष्य को सुख-शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती। इसलिये मनुष्य यदि यह चाहता है कि उसे शाश्वत सुख एवं अखंड शान्ति की प्राप्ति हो, तो उसे अपनी सुरति का रुख अन्दर की ओर मोड़ना होगा। जीव के अन्दर सुख-शान्ति का असीम भण्डार है। इस भण्डार के साथ सुरति का सम्बन्ध जोड़ने से ही मनुष्य को सच्चा सुख और सच्ची शान्ति प्राप्त हो सकती है।

अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि मनुष्य के अन्दर आत्मिक धन तथा सुख-शान्ति का जो असीम भण्डार विद्यमान है, क्या उस तक वह स्वयं अपने पुरुषार्थ से पहुँच सकता है ? इसके उत्तर में सन्तों तथा सद्ग्रन्थों का यह कथन है कि सन्त सद्गुरु के

मार्गदर्शन के बिना मनुष्य का तथाकथित भण्डार तक पहुँच सकना नितान्त असम्भव है। चूंकि सन्त सद्गुरु उस भण्डार तक पहुँचने के मार्ग से पूर्णतः अभिज्ञ होते हैं, अतएव वे ही मनुष्य को इस मार्ग से अवगत करा सकते हैं। अभिप्राय यह कि शाश्वत सुख और परम शान्ति की प्राप्ति समय के सन्त सद्गुरु की सहायता एवं उनके पावन सान्निध्य में ही सम्भव है, अतएव मनुष्य को जीवन में पल-पल सन्त सद्गुरु की सहायता तथा उनकी अनुकम्पा की आवश्यकता है।

सत्पुरुष मनुष्य को पल-पल समझाते हैं कि ऐ मनुष्य! जागतिक पदार्थों में सुख नाम को भी नहीं है। उनमें तुझे जो सुख भासता है, वह केवल छलावा मात्र है। वास्तव में तो उनमें दुःख ही दुःख भरा हुआ है। ये पदार्थ तो वस्तुतः विष की उन गोलियों के समान हैं जिनके ऊपर चीनी की परत चढ़ा दी गई हो। इसीलिये तो सत्पुरुषों ने फ़रमाया है कि—

'ये मीठे फल ज़हर भरे हैं सुख थोड़ा और विपत घनेरी'

एक बालक अपने पिता के साथ मेला देखने गया और पिता की अंगुली पकड़े हुये मेले में घूमने लगा। मेले में खिलौने, मिठाई आदि नाना प्रकार की वस्तुओं की दुकानें सजी हुई थीं और बच्चा उन्हें देख-देख कर प्रसन्न हो रहा था और किलकारियां मार रहा था। अकस्मात् भीड़ में बच्चे के हाथ से पिता की अंगुली छूट गई। बच्चा रोने लगा। कई लोगों ने उसे मिठाई, खिलौने आदि देकर बहलाने का यत्न किया, परन्तु बालक चुप न हुआ। अब यहां पर विचारणीय प्रश्न यह है कि मेला भी वही है, दुकानें भी उसी प्रकार सजी हुई हैं, फिर भी वह बालक दुःखी और परेशान है तो क्यों? इस का

कारण स्पष्ट है कि जब तक वह अपने पिता के साथ था, तभी तक उसे ये दृश्य लुभावने और मनमोहक प्रतीत हो रहे थे और वह इनमें सुख-आनन्द का अनुभव कर रहा था, परन्तु ज्यों ही वह पिता से विलग हुआ, ये सभी दृश्य उसके लिये नीरस हो गये और उसे सुख प्रदान करने में असफल हो गये। अब जब तक उसका मिलाप पिता से नहीं होता, तब तक उसे सुख और शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती।

यही स्थिति आम संसारी जीवों की भी है। वे भी इस संसार रूपी मेले में, जहां भांति-भांति के मायिक पदार्थों की दुकानें विद्यमान हैं, आये हैं; परन्तु इन पदार्थों में उन्हें सच्चा और स्थायी सुख नहीं मिलता। सच्चा सुख तो उन्हें तभी प्राप्त हो सकता है जब उनकी सुरति का परम पिता परमात्मा के साथ मिलाप हो जाये, जिससे विलग होकर वह चिरकाल से भटक रही है। सुरति का मालिक के साथ मिलाप तभी हो सकता है जब वह सद्गुरु द्वारा प्रदत्त शब्द का अभ्यास करके पारमार्थिक पड़ाव तय करे। किन्तु स्मरण रहे कि इन पारमार्थिक मंज़िलों को विना पथ-प्रदर्शक के तय करना नितान्त असम्भव है। सन्त सद्गुरु चूँकि पारमार्थिक भेदों से पूरी तरह अभिज्ञ होते हैं, अतएव उन के पथ-प्रदर्शन में अर्थात् उनके आदेशों एवं निर्देशों के अनुसार प्रत्येक कार्यवाही करने से ही मनुष्य मालिक की प्राप्ति कर सकता है और सुख-शान्ति के भण्डार तक पहुँच सकता है।

एक रानी का नौलखा हार, जो उसने स्नान करते समय उतार कर रखा था, ग़ायब हो गया। राजा को जब इस बात का समाचार मिला तो उसने सारे नगर में यह घोषणा करवा दी

कि जो कोई रानी का नौलखा हार खोज कर लायेगा, उसे खूब पुरस्कार दिया जायेगा। यह घोषणा सुन कर एक निर्धन व्यक्ति यह सोचकर उस हार की खोज में निकल पड़ा कि दैवयोग से यदि उसे यह हार मिल जाये, तो वह राजा से पुरस्कार प्राप्त करके सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करे। उसने नगर के कोने-कोने, गली-गली में जा कर हार का पता लगाने का प्रयत्न किया; इस कार्य में उसने न दिन देखा न रात, परन्तु उसे हार के विषय में कुछ भी पता न चला। अन्त में निराश होकर वह नगर के बाहर स्थित एक सरोवर के किनारे वृक्ष की छाया में जा बैठा। कुछ देर बाद उसकी दृष्टि सरोवर में पड़ी, तो सरोवर में उसे वही हार दिखाई पड़ा। हार देख कर उसकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। उसने तुरन्त कपड़े उतारे और हार को निकालने के लिये तालाब में कूद पड़ा और उस स्थान पर डुबकी लगाई, जहां पर उसे हार दिखाई दिया था, परन्तु उसे उस स्थान पर कुछ न मिला। थोड़ी देर तक यत्न करने के बाद वह थक कर सरोवर के बाहर निकल आया और फिर अपने स्थान पर बैठ गया और सोचने लगा कि हार मुझे दिखाई तो दिया था, फिर मिला क्यों नहीं! क्या मैंने स्वप्न देखा है अथवा मुझे धोखा हुआ है? इतनी देर में सरोवर का पानी पुनः शान्त हो गया। वह व्यक्ति क्या देखता है कि हार तो सरोवर में पड़ा हुआ है। यह देख कर वह पुनः सरोवर में कूद पड़ा, परन्तु इस बार भी वह सफल न हुआ। इस प्रकार उस बेचारे ने अनेकों बार सरोवर में छलांग लगाई, परन्तु वह हार उसके हाथ न लगा। वह माथे पर हाथ रखकर सोचने लगा कि यह क्या जादू है कि हार सरोवर में दिखाई तो देता है, परन्तु मिलता नहीं। एक

यात्री, जो अकस्मात् उधर आ निकला था, बड़ी देर से यह तमाशा देख रहा था कि एक मनुष्य, जो वेष-भूषा से निर्धन ज्ञात होता है, बार-बार तालाब में डुबकी लगा कर कुछ खोजने का प्रयत्न कर रहा है। अन्त में वह उस निर्धन व्यक्ति के पास आया और पूछा—क्यों भाई! तुम सरोवर में क्या ढूंढ रहे हो? उस निर्धन व्यक्ति ने सोचा कि यदि इसको वास्तविकता बतला दी, तो यह व्यर्थ ही पुरस्कार की राशि में भागीदार बन जायेगा। किन्तु फिर विचार करने लगा कि मुझे तो हार मिलता नहीं, इसलिये यदि इसे सारी बात बता दूँ और यह हार खोज निकालने में मेरी सहायता करे और पुरस्कार का भागीदार बन जाये, तो क्या हानि है? यह विचार कर वह बोला—भाई! रानी का नौलखा हार गुम हो गया है और राजा ने उसके लिए पुरस्कार घोषित किया है। वही हार मुझे सरोवर में पड़ा दिखाई तो देता है, परन्तु हाथ नहीं आता।

यह सुनकर उस यात्री ने सरोवर में देखा तो उसे भी वह हार दिखाई पड़ा। उसने तुरन्त सारी स्थिति समझ ली और उस पेड़ पर दृष्टि डाली जिसकी छाया में वह निर्धन व्यक्ति बैठा हुआ था। क्या देखता है कि हार वृक्ष की एक शाखा पर लटका हुआ है, जिसका प्रतिबिम्ब तालाब में झलक रहा है। वस्तुतः हुआ यह कि जब रानी ने हार उतारकर रखा तो उस हार को एक चील ने उठा लिया और इस पेड़ पर आकर बैठ गई। कुछ देर पश्चात जब वह वहाँ से उड़ी, तो हार को उसी पेड़ पर छोड़ दिया।

वह यात्री पेड़ पर चढ़ गया और हार उतार कर उसने उस निर्धन व्यक्ति के हाथ में दे दिया। उस निर्धन व्यक्ति ने यात्री को अनेक बार धन्यवाद दिया और हार लेकर राजदरबार में गया

और राजा से पुरस्कार के रूप में बहुत सा धन प्राप्त किया। सच है—

॥ दोहा ॥

वस्तु कहीं ढूंढे कहीं, केहि बिधि आवै हाथ।
कह कबीर तब पाइये, जब भेदी लीजै साथ॥
भेदी लीन्हा साथ कर, दीन्ही वस्तु लखाय
कोटि जनम का पंथ था, पल में पहुँचा जाय॥

परमसन्त श्री कबीर साहिब

मनुष्य के अन्दर भी सुख-शान्ति का असीम भण्डार विद्यमान है। अज्ञानता के कारण मनुष्य व्यर्थ ही माया एवं मायिक पदार्थों के सरोवर में उस सुख को खोजने का प्रयत्न करता रहता है। परिणामस्वरूप जब उन पदार्थों में सुख की प्राप्ति नहीं होती, तो दुःखी और परेशान होता है। वास्तव में माया और मायिक पदार्थों में जो सुख भासता है, वह वास्तविक नहीं; वह तो उस अखण्ड सुख की प्रतिच्छाया मात्र है जो मनुष्य के घट में विद्यमान है। किन्तु उसके लिये आवश्यक है कि जीव उस ख़ज़ाने तक पहुँचने के लिए उस मार्ग के भेदी अथवा ज्ञाता की शरण पकड़े; और उस भण्डार के भेदी हैं—समय के सन्त सद्गुरु।

अभिप्राय यह कि जीव यदि चाहता है कि उसे शाश्वत सुख और परम शान्ति की प्राप्ति हो, तो उसे चाहिए कि वह समय के सन्त सद्गुरु की चरण-शरण में जाकर मालिक के नाम का अभ्यास करे और सुरति को सब ओर से समेटकर अन्तर्मुख करने का प्रयत्न करे। जो व्यक्ति सन्त सत्पुरुषों की चरण-शरण ग्रहण कर उनका दास बन जाता है, वही शाश्वत सुख और नित्य शान्ति प्राप्त

करता है। सत्पुरुषों का कथन है:—

॥ दोहा ॥

कोई तो तन-मन दुःखी, कोई चित्त उदास।
एक एक दुख सबन को, सुखी सन्त का दास ॥

जो मनुष्य यह कहता है कि मेरा भजन में मन नहीं लगता, तो उसका मुख्य कारण यही है कि उसकी सुरति अभी तक बाह्य सम्बन्धों एवं पदार्थों में अटकी हुई है। जब तक वह अपनी सुरति को बाह्य पदार्थों में अटकाये रखेगा, तब तक उसका मन भजन-अभ्यास में नहीं लग सकता। इसलिये जिज्ञासु को चाहिये कि वह अपनी सुरति को सांसारिक पदार्थों में आसक्त न होने दे। इसी का नाम वैराग्य है। घर-बार को त्याग कर वन में जा बैठने का नाम वैराग्य कदापि नहीं है, प्रत्युत सांसारिक पदार्थों से सुरति को अबद्ध एवं अलिप्त रखने का नाम वैराग्य है। संसार में रहना बुरा नहीं, संसार का बन जाना बुरा है। यदि चित्त में वैराग्य है तो भजनाभ्यास में अवश्य ही मन लगेगा, इसमें कोई संशय नहीं।

बस ! मनुष्य को यही करना है कि सुरति को जागतिक पदार्थों से हटाकर मालिक के नाम में जोड़ना है। बुल्लेशाह के गुरु सन्त इनायतशाह थे, जो महापुरुष होते हुये साथ-साथ माली का काम भी करते थे। एक दिन वे पौध एक स्थान से उखाड़ कर दूसरे स्थान पर लगा रहे थे। इतने में बुल्लेशाह भी वहां पहुँच गये। उन्होंने अपने गुरु के चरणों में विनय की कि प्रभो ! मालिक की प्राप्ति का सुगम साधन क्या है ? उन्होंने उत्तर में फ़रमाया—"बुल्लेया ! रब दा की पावणा, इधरों पुटनां तां

ओधर लावणा" अर्थात् मालिक को प्राप्त करना कौन-सा कठिन है? उसको प्राप्त करने के लिये केवल इतना करना है कि सुरति को इधर से (संसार से) उखाड़ कर उधर (मालिक के चरणों में) लगाना है। परमसन्त श्री कबीर साहिब का कथन है—

॥ दोहा ॥

कबीर मन तो एक है, चाहै जहां लगाय ।
चाहै गुरु की भक्ति कर, चाहै विषय कमाय ॥

सुख-शान्ति प्राप्त करने का कितना सुगम साधन है। मनुष्य केवल इतना करे कि सुरति को सब ओर से समेट कर कुल मालिक सन्त सद्गुरु की श्री आज्ञा-मौज अनुसार मालिक के नाम की कमाई करता जाये। नाम के अभ्यास से जैसे-जैसे उसकी सुरति एकाग्र होकर अन्तर्मुख होती जायेगी, वैसे-वैसे ही वह सुख-शान्ति के भण्डार के निकट होता जायेगा।

संसार में महापुरुषों का आना मुबारक, जिनके शुभागमन से काम-क्रोध-लोभ-मोह-अहंकार आदि की अग्नि से तपती-झुलसती आत्माओं को शाश्वत सुख और परम शान्ति प्राप्त होती है। वे गुरुमुख आत्मायें भी धन्यवाद की पात्र हैं, जो महापुरुषों की छत्रच्छाया में रहकर शाश्वत सुख और शान्ति की प्राप्ति करके अपना जीवन सफल कर रही हैं।

कविता

बहुत दिन पहले का इक किस्सा मैं करता हूँ बयां ।
राज १राहत दायमी का जिसके अन्दर है २पिन्हां ॥

उन दिनों का ३रोज़मर्रा का मेरा दस्तूर था ।
सुबह उठ के सैर को जाता मैं काफी दूर था ॥

शहर से कुछ फ़ासले पर एक बहती थी नदी ।
पास ही उसके थी इक साधु की छोटी सी कुटी ॥

जब भी जाता मैं उधर तो देखता था बस यही ।
रहता था वह मग्न खुद में जग की कुछ न खबर थी ॥

दुनियां के झगड़ों-झमेलों से बहुत वह दूर था ।
याद में मालिक की हर दम रहता वह ४मखमूर था ॥

तन बदन की सुधि नहीं थी और न खाने की फ़िकर ।
हर घड़ी उसकी ज़बां पे रहता मालिक का ज़िकर ॥

साधु वह हर हाल में रहता सदा ५मसरूर था ।
उसके चेहरे पर बरसता इक निराला नूर था ॥

---

१. शाश्वत सुख २. छिपा हुआ ३. प्रतिदिन ४. मग्न
५. आनन्दमग्न ।

देख कर साधु को मेरे दिल में उठता था सवाल ।
कौन सी अनमोल दौलत से है साधु मालामाल ॥

किस वजह से रहता है साधु हमेशा १शादमां ।
सोच कर यह बात दिल में बहुत होता मैं हैरां ॥

माजरा मुझको मगर कुछ भी समझ आया नहीं ।
राज़ साधु की खुशी का मैं समझ पाया नहीं ॥

आखिर इक दिन जा किया मैंने यह साधु से सवाल ।
राज़ क्या है आपकी २मुसर्रत का ऐ ३ओज-ए-कमाल ॥

ऐश-ो-इशरत के सामानों की नहीं मुझ पे कमी ।
नेमतें भी ४दहर की मुझको ५मुयस्सर हैं सभी ॥

धन भी है और मान भी और रुतबा भी मिला ।
है मकान-ो- मलकियत भी और कुनबा भी बड़ा ॥

दुनिया की सब राहतों से घर मेरा भरपूर है ।
दिल मेरा चैन-ो-सकूँ से फिर भी कोसों दूर है ॥

आप पे गो कि है दुनिया के सामानों की कमी ।
फिर भी चेहरे पर सदा रहती है ६लाफ़ानी खुशी ॥

राज़ इस सच्ची ख़ुशी का मुझको भी बतलाइये ।
मुझ पे भी ऐ मेहरबां नज़रे-करम फ़रमाइये ॥

---

१. प्रसन्न २. ख़ुशी ३. ऊँचे मर्तबे वाले ४. संसार
५. उपलब्ध ६. शाश्वत

सुन के मेरी बात साधु बोला ऐ १फ़रखंदा-ख्याल ।
दुनिया के सामानों में मिलना खुशी का है मुहाल ॥

इन सामानों में नहीं राहत का है नामो-निशां ।
फिर तू क्यों इनमें ख़ुशी को ढूंढता है ऐ नादां ॥

घट में ही मौजूद है खुशियों का २ गंजे-बेबहा ।
पहुँचने का उस तलक ३ मख़फ़ी है लेकिन रास्ता ॥

दिल की गहराई में जाने से वह आयेगा नज़र ।
जिस को पा कर ज़िंदगी होगी खुशी से फिर बसर ॥

दुःख-दर्द-ग़म फिर कभी न पास तेरे आयेंगे ।
ज़िंदगी में फूल खुशियों के सदा मुस्कायेंगे ॥

उस ख़ज़ाने पे पहुँचने की दिल में ख्वाहिश है अगर ।
मुर्शिदे-कामिल की सोहबत में तू जा न देर कर ॥

४ खिदमत-ो-ताज़ीम से जब तू करेगा ५ इल्तिजा ।
उस ख़ज़ाने पर पहुँचने की युक्ति वे देंगे बता ॥

घट में झांकेगा जभी आंख कान मुँह ढांप कर ।
'दास' पायेगा खुशी कहता हूँ सच सच ऐ ६ पिसर ॥

---
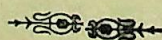
१. शुभ विचारों वाले २. असीम भंडार ३. गुप्त ४. सेवा और आदर ५. प्रार्थना, विनय ६. वत्स ।

भक्ति और माया

(गताङ्क से आगे)

एक जिज्ञासु ने एक महात्मा जी की चरण-शरण ग्रहण की और उनसे नाम-दान लेकर आश्रम में ही रह कर आश्रम की सेवा और मालिक का भजन-सुमिरण करने लगा। किन्तु उसके मन में अभी इधर-उधर के सांसारिक विचार बहुत उठते थे। कभी उसका मन आश्रम में शारीरिक सुख-सुविधाओं की कमी अनुभव करता और सोचता कि मुझे अमुक-अमुक पदार्थ भी मिल जायें, कभी उसके मन में मान-सम्मान की इच्छा जाग्रत होती और कभी स्वादिष्ट व्यंजनों की उसके मन में लालसा उठती। इन अनेक प्रकार के विचारों के कारण उस का मन भजनाभ्यास में न लगता। एक दिन उसने महात्मा जी के चरणों में विनय की-प्रभो ! मैंने संसार का त्याग करके आपकी चरण-शरण ग्रहण की है, फिर भी मेरा मन भजनाभ्यास में नहीं लगता, इसका क्या कारण है ? महात्मा जी ने उसके मन की अवस्था को परख कर उसे सन्मार्ग पर लगाने की एक युक्ति सोची और फ़रमाया-तुम्हारे प्रश्न का उत्तर हम कल देंगे।

दूसरे दिन महात्मा जी ने अपने शिष्यों को, जिनमें वह जिज्ञासु भी सम्मिलित था, बुलाया और फ़रमाया-हमारा विचार है कि आश्रम में एक कुआं खोदा जाये। तुम लोग हमारे साथ आओ। हम स्थान बतलाते हैं, वहां पर खुदाई आरम्भ करो। शिष्यों

ने उस स्थान को खोदना आरम्भ कर दिया। कुछ समय बाद महात्मा जी ने उनको वहां से हटा कर दूसरे स्थान पर खोदने को कहा। अभी शिष्यों ने वहां भी फुट-दो फुट ही खोदा होगा कि फिर आदेश हुआ कि यहां भी पानी नहीं है, अमुक स्थान पर खोदो। इसी प्रकार महात्मा जी थोड़ी-थोड़ी देर बाद स्थान बदलते रहे। जब कई बार ऐसा हुआ तो उस जिज्ञासु से रहा न गया और बोल उठा—स्वामिन ! इस प्रकार न तो कुआं खुदेगा और न ही पानी निकलेगा। महात्मा जी बोले—फिर कुआं कैसे खुदेगा और पानी कैसे निकलेगा ? जिज्ञासु ने विनय की—प्रभो ! जब एक ही स्थान पर धरती को खोदा जायेगा, तभी पानी निकलेगा। बार-बार स्थान बदलने से तो पानी की प्राप्ति का उद्देश्य कभी पूरा न होगा।

महात्मा जी गम्भीर वाणी में बोले—जब तुम इस बात को समझते हो, तो फिर एकचित्त हो कर मालिक के नाम में सुरति क्यों नहीं लगाते ? फिर शारीरिक सुख-सुविधाओं, मान-सम्मान आदि के विचारों को मन में स्थान क्यों देते हो ? यदि तुम मन को इधर-उधर के विचारों में न भटका कर केवल मालिक की प्राप्ति का ही लक्ष्य सामने रखो और केवल यही एक मार्ग पकड़ो, तो कोई कारण नहीं कि तुम्हारा भजनाभ्यास में मन न लगे।

महात्मा जी के ये वचन सुनते ही जिज्ञासु की आंखें खुल गईं और उसने अपनी भूल स्वीकार कर महात्मा जी से क्षमा मांगी। तत्पश्चात् उसने सुरति को संसार के असत् पदार्थों एवं मान-सम्मान आदि के विचारों से मोड़ कर मालिक के नाम में जोड़ दिया और महात्मा जी की कृपा एवं शुभाशीर्वाद से अपने लक्ष्य को प्राप्त किया।

अभिप्राय यह कि मनुष्य को जिस वस्तु की प्राप्ति की इच्छा है, उसे उसी की प्राप्ति के लक्ष्य को हर समय सम्मुख रखना चाहिये और केवल उसी मार्ग पर चलते रहना चाहिए। अन्य सब मार्गों का उसे त्याग कर देना चाहिये। यदि उसे मालिक की प्राप्ति की इच्छा है, तो उसे भक्तिमार्ग पर चलना होगा और माया का मार्ग छोड़ना होगा। दो घर का अतिथि सदैव भूखा ही रहता है। दो नावों पर पांव रखने वाला व्यक्ति कभी पार नहीं हो सकता।

इब्राहीम अधम बलख बुखारा का सम्राट् था। उसके हृदय में मालिक की प्राप्ति की इच्छा थी। यद्यपि उसकी यह लगन सच्ची थी, फिर भी उसे बहुत समय तक प्रभु के दर्शन न हुये। एक दिन उसने स्वप्न में देखा कि कुछ लोग महल की छत पर घूम रहे हैं। इब्राहीम अधम ने उन्हें सम्बोधित करते हुये कहा—तुम लोग यहां क्या कर रहे हो ? उन्होंने उत्तर दिया कि हमारा ऊँट खो गया है, उसी को ढूंढ रहे हैं। इब्राहीम अधम ने हँसते हुये कहा—नादानों ! तुम लोगों को इतनी भी समझ नहीं कि ऊँट महल की छत पर कैसे आ सकता है और छत पर कैसे गुम हो सकता है ? इसके उत्तर में वे इब्राहीम अधम से भी अधिक उच्च स्वर में हँसते हुए बोले—हम से अधिक नादान तो तुम हो, जो भगवान् को भी पाना चाहते हो और माया को भी छोड़ना नहीं चाहते। भला भक्ति और माया का क्या मेल ?

इब्राहीम चौंक कर उठ बैठा और सोचने पर विवश हुआ। अन्त में उसने मालिक की प्राप्ति के लिए माया और साम्राज्य का बलिदान कर दिया।

इसीलिए भक्तजन, जिन्हें समय के महापुरुषों की शरण-संगत प्राप्त हो जाती है और जिन्हें उन की पावन संगति के प्रताप से

भक्ति और माया के अन्तर का पता चल जाता है, वे माया को अति तुच्छ वस्तु जानकर उसका त्याग कर देते हैं जबकि आम संसारी मनुष्य उसके पीछे-पीछे भागते हैं। जैसे मनुष्य के वमन को श्वान बड़े चाव से खाता है, उसी प्रकार जिस माया एवं सांसारिक पदार्थों को भक्तजन तुच्छ से भी तुच्छ समझते हैं, वही आम संसारियों की दृष्टि में अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। रहते दोनों संसार में हैं, परन्तु उनके दृष्टिकोण में धरती-आकाश का अन्तर है। सत्पुरुषों का कथन है:—

॥ दोहा ॥

हंसा बगुला एक सा, मानसरोवर माहिं।
बग ढिंढोरै माछरी, हंसा मोती खाहिं॥
जा माया भक्तन तजी, ताहि चहै संसार।
भक्तन भक्ति प्यारी है, और न चित्त विचार॥

परमसन्त श्री कबीर साहिब

अर्थ—"हंस और बगुला–दोनों मानसरोवर में रहते हैं, परन्तु हंस तो अपने स्वभाव के कारण मोती का आहार करते हैं जबकि बगुले मछली ढूँढते हैं। भाव यह कि भक्तजन और आम संसारी मनुष्य संसार में ही रहते हैं, परन्तु भक्तजन हंस की न्याईं भक्ति के मोती चुगते हैं जबकि आम संसारी मनुष्य माया रूपी मछली की प्राप्ति के यत्न में ही लगे रहते हैं।"

"पुनः फ़रमाते हैं कि जिस माया को भक्तजन अति तुच्छ समझकर त्याग देते हैं, संसारी लोग उसी माया की कामना करते हैं। भक्तों को तो केवल मालिक की भक्ति ही प्रिय है। इसके अतिरिक्त उनके मन में अन्य कोई विचार उठता ही नहीं।"

महाभारत युद्ध के पूर्व अर्जुन तथा दुर्योधन दोनों ही भगवान् श्रीकृष्ण के पास सहायता मांगने के लिये गये। दुर्योधन पहले पहुँचा। उसने देखा कि भगवान् विश्राम में हैं। वे उनके विश्राम से उठने की प्रतीक्षा में उनके सिरहाने की ओर रखी हुई कुर्सी पर बैठ गया। इतने में अर्जुन भी वहां आ पहुँचा। जब उसने भगवान् श्रीकृष्ण को विश्राम में देखा, तो उनके भी चरणों में नमस्कार कर वहीं नीचे बैठ गया। दुर्योधन के अन्दर राज्य का मद था, अतएव वह सिरहाने की ओर कुर्सी पर बैठा। अर्जुन के अन्दर भक्ति थी और जहां भक्ति है वहां नम्रता है, क्योंकि नम्रता भक्ति का आभूषण है, अतएव वह भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों की ओर नीचे धरती पर बैठा। जब भगवान् श्रीकृष्ण विश्राम से उठे तो उनकी दृष्टि सीधे अर्जुन पर पड़ी। भगवान ने पूछा—अर्जुन! कब आये? इस से पहले कि अर्जुन कुछ उत्तर दे, दुर्योधन बोल उठा—पहले मैं आया हूँ, इसलिये पहला अधिकार मेरा है। आप युद्ध में मेरी सहायता कीजिये।

अर्जुन ने भी भगवान् के चरणों में विनय की—प्रभो! मैं भी आप से युद्ध के लिए सहायता माँगने आया हूँ।

दुर्योधन तुरन्त बोला—पहले मैं आया हूँ, अतएव पहला अधिकार मेरा है।

भगवान् बोले—दुर्योधन! तुम्हारा कहना ठीक हो सकता है, परन्तु मैंने चूँकि पहले अर्जुन को देखा है, अतएव पहला अधिकार अर्जुन का ही है। मैं तुम दोनों की युद्ध में सहायता करूँगा। एक ओर मैं अकेला बिना किसी अस्त्र-शस्त्र के रहूँगा और दूसरी ओर मेरी चतुरंगिनी सेना होगी। दोनों में से एक की ही प्राप्ति

होगी। अर्जुन ! चूंकि पहला अधिकार तुम्हारा है, अतएव तुम इन दोनों में से एक का चयन कर लो। बोलो ! तुम्हें क्या चाहिये।

भगवान् श्रीकृष्ण के ये शब्द सुन कर दुर्योधन की आशाओं पर तुषारापात हो गया। उसने मन में सोचा कि सेना तो अर्जुन मांग लेगा, मैं अकेले और वह भी निहत्थे कृष्ण को लेकर क्या करूँगा ! अभी वह यह बात सोच ही रहा था कि अर्जुन के शब्द उसके कानों से टकराये, जिन्हें सुनकर वह प्रसन्न होने के साथ-साथ आश्चर्यचकित भी हुआ। वह अर्जुन को अज्ञानी समझ कर मन ही मन खूब हँसा। क्या थे अर्जुन के वे शब्द और उस ने क्या मांगा भगवान् से ? उसने भगवान् के श्री चरणों में विनय की—प्रभो ! मुझे आपकी चतुरंगिनी सेना नहीं चाहिये। मुझे तो केवल आपकी आवश्यकता है।

भगवान् ने फरमाया—अर्जुन ! एक बार फिर सोच लो, क्योंकि कमान से निकला हुआ तीर कभी वापस नहीं आता। मुझ अकेले और शस्त्रहीन को लेकर क्या करोगे ? चतुरंगिनी सेना, जिसमें एक से बढ़ कर एक शूरवीर और योद्धा हैं, क्यों नहीं मांगते ?

अर्जुन ने कहा—प्रभो ! मैंने भली प्रकार सोच कर ही मांगा है। मुझे आपकी सेना की नहीं, आपकी आवश्यकता है।

दुर्योधन को नारायणी सेना मिल गई और अर्जुन को भगवान्। अपने-अपने दिल में दोनों ही प्रसन्न हैं, क्योंकि दोनों को उनकी मनचाही वस्तु मिल गई। दोनों ही एक-दूसरे को अज्ञानी समझ रहे हैं। दुर्योधन सोच रहा है कि देखो ! अर्जुन कितना

अज्ञानी है कि इतनी विशाल सेना को छोड़ कर उसने निहत्थे कृष्ण को माँग लिया। क्या करेगा वह निहत्थे कृष्ण को लेकर ! उधर अर्जुन सोच रहा है कि दुर्योधन कितना अज्ञानी है कि भगवान् की अपेक्षा सेना को लेकर प्रसन्न हो रहा है।

युद्ध प्रारम्भ होने से पूर्व भगवान् ने पाण्डवों को आदेश दिया कि जाओ ! सर्वप्रथम अपने गुरुजनों—द्रोणाचार्य तथा भीष्म पितामह के चरणों में नमस्कार कर आशीर्वाद लेकर आओ, तब युद्ध आरम्भ करना। पाण्डवों ने उनके चरणों में उपस्थित होकर अत्यन्त श्रद्धापूर्वक नमस्कार कर उनसे आशीर्वाद मांगा। उन्होंने पाण्डवों की श्रद्धा एवं भक्ति देखकर उन्हें आशीर्वाद दिया:—

जयोऽस्तु पाण्डुपुत्राणां येषां पक्षे जनार्दनः ।
यतः कृष्णस्ततो धर्मो यतो धर्मस्ततो जयः ॥

कि जिधर श्रीकृष्ण हैं उधर धर्म है और जिधर धर्म है उधर विजय है। युद्ध में विजयश्री किसे प्राप्त हुई, यह सर्वविदित है। जिसने भगवान् को मांगा, उसकी युद्ध में जीत हुई और जिसने अर्जुन को अज्ञानी समझा और चतुरंगिनी सेना प्राप्त कर जो फूला न समाया, उसे न केवल पराजय का मुख देखना पड़ा, प्रत्युत अपने प्राणों से भी हाथ धोना पड़ा।

इस कथा में जो विशेष विचारणीय बात है वह यह कि जो वस्तु अर्जुन की दृष्टि में अधिक महत्वपूर्ण थी, दुर्योधन की दृष्टि में उसका कोई महत्व नहीं था। इसके विपरीत जो वस्तु भक्त अर्जुन ने तुच्छ और महत्वहीन समझकर त्याग दी, दुर्योधन की दृष्टि में वही वस्तु सर्वोत्कृष्ट और महत्वपूर्ण थी। अर्थात जिस चतुरंगिनी

सेना को भक्त अर्जुन ने तुच्छ समझ कर ठुकरा दिया, उसे पा कर दुर्योधन ने स्वयं को अत्यन्त सौभाग्यशाली समझा ।

एक बार काकभुशुण्डि पर प्रसन्न होकर भगवान् श्री राम ने फरमाया—

॥ दोहा ॥

काकभुसुण्डि माँगु बर, अति प्रसन्न मोहि जानि ।
अनिमादिक सिधि अपर रिधि, मोच्छ सकल सुख खानि ॥

॥ चौपाई ॥

ग्यान बिबेक बिरति बिग्याना । मुनि दुर्लभ गुन जे जग नाना ॥
आज देउँ सब संसय नाहीं । माँगु जो तोहि भाव मन माहीं ॥

श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड

अर्थ—"हे काकभुशुण्डि ! मुझे अति प्रसन्न जानकर वर माँग लो। अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा आदि अष्ट प्रकार की सिद्धि, ऋद्धि तथा सर्वसुखों की खान मुक्ति, जो चाहिए सो माँग लो।"

"ज्ञान (आत्मज्ञान), विवेक (सत्-असत् की परख), विरति (संसार के प्रति वैराग्य), विज्ञान (तत्त्व ज्ञान) तथा जो अनेक प्रकार के गुण संसार में ऋषियों-मुनियों को भी दुर्लभ हैं , आज वह सब कुछ मैं तुझे देने को तैयार हूँ, इस में तनिक भी संशय नहीं है। अतएव जो कुछ तुम्हारी इच्छा हो, माँग लो ।"

भगवान् को प्रसन्न जानकर काकभुशुण्डि जी के हर्ष का ठिकाना न रहा; क्योंकि भक्त के लिये इष्टदेव की प्रसन्नता ही उसकी सच्ची निधि है। वे मन में विचार करने लगे कि भगवान् ने ऋद्धि, सिद्धि, ज्ञान, विवेक, वैराग्य तथा मुक्ति आदि सभी कुछ देने को कहा है, परन्तु अपनी भक्ति देने का नाम तक नहीं लिया ।

भक्ति बिना तो ये सब सुख ऐसे ही हैं जैसे नमक के बिना व्यंजन। यह विचार कर उन्होंने भगवान् के चरणों में विनय की—

॥ दोहा ॥

अबिरल भगति बिसुद्ध तव, श्रुति पुरान जो गाव।
जेहि खोजत जोगीस मुनि, प्रभु प्रसाद कोउ पाव॥
भगत कल्पतरु प्रनत हित, कृपासिंधु सुखधाम।
सोइ निज भगति मोहि प्रभु, देहु दया करि राम॥

श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड

अर्थः—आपकी जो विशुद्ध भक्ति है, वेद-पुराण जिसका गायन करते हैं, योगी-मुनिजन जिसको ढूँढते रहते हैं, मालिक की कृपा से उसे कोई विरला ही पाता है। आप भक्तों के कल्पवृक्ष हैं अर्थात् आप भक्तों की मनोकामना पूर्ण करने वाले हैं, सो हे कृपासिन्धु सुखधाम प्रभो! आप दया करके वही अपनी भक्ति मुझे दीजिये।

भक्तों और संसारियों में यही अन्तर है। जो सांसारिक वस्तुयें, जो माया के पदार्थ भक्तों की दृष्टि में तुच्छ से भी तुच्छ हैं, आम संसारियों की दृष्टि में वही जागतिक पदार्थ अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। सत्पुरुषों का कथन हैः—

माया भुलावै सब जग भुल्या, बिसरिआ करतारा।
माया तजि भक्ति चित लावै, बिरला गुरुमुख प्यारा॥

सारा संसार माया के भुलावे में आकर मालिक को भूल गया

है और माया के भ्रम-जाल में ऐसा फंस गया है कि अपने कर्त्तव्य को, अपने लक्ष्य को और यहां तक कि अपने आप को भी भूल गया है और इस माया के धोखे में आकर वह चौरासी लाख योनियों के चक्कर काटता रहता है। किन्तु जो माया को त्याग कर तथा माया के भ्रम-जाल से निकल कर भगवान् के श्री चरणों में चित्त लगाते हैं, वे कोई विरले गुरुमुख एवं भक्तजन होते हैं, जिन्हें अत्यन्त सौभाग्य से समय के सन्त सद्गुरु की पावन संगति मिल जाती है; क्योंकि सन्त सद्गुरु ही जीव को इस माया के धोखे से बचा कर आवागमन के चक्कर से छुड़ाते हैं।

इसलिये जो मनुष्य मालिक की प्राप्ति कर के जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति प्राप्त करना चाहता है, उसे सन्त सद्गुरु की पावन संगति प्राप्त कर उनसे सदैव भक्ति की ही कामना करनी चाहिये; इसी में जीवात्मा का कल्याण है।

उपदेश

स्वर:—कर जोड़ प्रथम प्रणाम करूं......॥

टेक:—यह जन्म मिला है तुझे प्राणी,
मालिक की भक्ति कमाने को ।
यह मानुष तन इक सीढ़ी है,
चौरासी से मुक्ति दिलाने को ॥

१—दुनिया से दिल न लगाना तुम,
प्रभु-प्रेम को दिल में बसाना तुम ।
दुनिया के धंधों में फंस कर,
नहीं जन्म यह वृथा गंवाने को ॥

२—तू शरीर से अपनी नजर हटा,
रूह का कल्याण भी सोच ज़रा ।
सतगुरु संसार में आये हैं,
भवसागर पार कराने को ॥

३—तू सिर के मोल भी सौदा कर,
गुरु-दर से भक्ति खरीदा कर ।
गुरु-शब्द ही असली पूंजी है,
जीवन सुखरूप बनाने को ॥

४—पूर्ण सतगुरु का पकड़ दामन,
बनें अन्त में जो तेरे ज़ामन ।
माया के चक्कर से 'दासा'
सतगुरु आये हैं बचाने को ॥

श्री अमर वाणी

मनुष्य जीवन की श्रेष्ठता

विधाता ने मनुष्य को श्रेष्ठ प्राणी का दर्जा दिया है अर्थात् अन्य सब योनियों से इसे श्रेष्ठ बना दिया है। अब विचार करना है कि अपने इस पद को मनुष्य क्योंकर बनाये रख सकता है? कहने का अभिप्राय यह कि किस प्रकार के कर्म करने से यह सब योनियों से उच्च स्थान पाने का अधिकारी कहला सकता है? आम संसारी जीवों की वर्तमान दशा पर दृष्टि डाली जाये तो क्या जिस प्रकार आम संसारी मनुष्य जीवन व्यतीत कर रहे हैं, इस स्थिति में वे श्रेष्ठ प्राणी कहलाने के अधिकारी हो सकते हैं? अर्थात् जो प्रायः शरीर और इन्द्रियों के अधीन रहकर काम-क्रोध-लोभ-मोह-अहंकार की दासता में जीवन व्यतीत कर रहे हैं और रात-दिन शारीरिक सुखभोगों और ऐन्द्रिक रसों में ही मग्न हैं तथा आशा-तृष्णा के शिकार हैं, क्या उनके जीवन की यही श्रेष्ठता और महानता है? कदापि नहीं। यह कार्य तो अन्य सब योनियां

भी कर रही हैं। मनुष्येतर जितनी भी योनियां हैं, वे केवल शरीर और इन्द्रियों के लिये ही सब काम करती हैं। मनुष्य की श्रेष्ठता तथा महानता इसमें नहीं कि यह भी आम योनियों की भांति केवल शरीर के पालन-पोषण एवं इन्द्रियों की तुष्टि को अपने जीवन का उद्देश्य बना ले। यदि मनुष्य होकर भी इसी प्रकार का जवन व्यतीत करने में प्रसन्न है, तो फिर वह आम योनियों से श्रेष्ठ और महान् तो न हुआ; उलटा उनसे भी निकृष्ट समझा जायेगा।

मनुष्य की श्रेष्ठता और महानता तो इस बात में है कि वह भौतिकता के विचारों को त्याग कर मालिक की भजन-भक्ति में चित्त लगाये। उसी को श्रेष्ठ प्राणी कहलाने का अधिकार है जो मन-इन्द्रियों का दास नहीं, प्रत्युत जिसने मन-इन्द्रियों को अपने अधीन कर लिया है और मालिक की भक्ति को अपना कर्त्तव्य समझ कर जो सदैव मालिक की भक्ति और प्रसन्नता का इच्छुक है। शरीर-इन्द्रियों से ऊपर उठकर मालिक की भक्ति की ओर प्रवृत्त होने में ही मनुष्य की वास्तविक अर्थों में श्रेष्ठता और महानता है।

जिन लोगों को बागवानी के काम का कुछ अनुभव है, वे जानते होंगे कि फूल और फल देने वाले पौधों को उत्तम प्रकार के फलों के पैवंद लगाये जाते हैं और जिन पौधों में पैवन्द लगाये जाते हैं, वे पहले की अपेक्षा उत्तम एवं चित्ताकर्षक फूल एवं फल देने लगते हैं। किन्तु शर्त यह है कि उस पेड़ की पुरानी टहनी को बढ़ने न दिया जाये और वह पैवन्द वाली शाखा पर हावी न होने पाये। इस काम के लिये माली सदैव पुरानी टहनी की कांट-छांट करता रहता है और पैवन्द वाली शाखा

का उचित पालन-पोषण एवं देखभाल करता रहता है। यदि कभी पुरानी शाखा पैवन्द वाली शाखा पर हावी हो जाये, तो फिर अभिलषित उत्तम फूल अथवा फल प्राप्त नहीं हो सकते, प्रत्युत उस दशा में वही पुराने फूल अथवा फल ही लगेंगे और सारा परिश्रम व्यर्थ हो जायेगा। अतएव यह विशेष ध्यान रखना होता है कि पुरानी शाखा के बढ़ने वाले भागों को निरन्तर काटा जाता रहे जिससे कि वे बढ़ कर पैवन्द वाली टहनी को दबा न लें।

सन्त महापुरुष भी इसी प्रकार आम संसारी मनुष्यों को प्रभु-भक्ति के संस्कारों का पैवन्द लगा देते हैं। जैसे उत्तम श्रेणी का पैवन्द लग जाने से वह पौधा जो पहले बेकार और फीके फल-फूल देता था, पैवन्द की शाखा से उत्तम, मधुर एवं सरस फल तथा सुन्दर फूल देने लगता है, वैसे ही आम मनुष्य का मन जिसमें पहले काम-क्रोध-लोभ-मोह-अहंकार के निरर्थक विचार और आशा-तृष्णा के हानिप्रद संस्कार भरे थे, अब उसी मन में मालिक के प्रेम और भक्ति के उत्तम विचार उभर आते हैं, जो उसके जीवन को न केवल सुन्दर ही बनाते हैं, प्रत्युत सुख, शान्ति और आनन्द से भरपूर भी। काम-क्रोध-लोभ-मोह-अहंकार के विचार ही मनुष्य के जीवन को दुःखमय एवं नीरस बनाने वाले हैं। उनके अधीन होने से मनुष्य का हृदय बुराइयों का घर बन जाता है, उसकी सुख-शान्ति छिन जाती है और वह सदैव दुःखी और परेशान बना रहता है। न केवल उसका इहलौकिक जीवन ही बिगड़ जाता है, प्रत्युत परलोक भी। वह केवल शरीर-इन्द्रियों के अधीन होकर संसार का दास बना रहता है और परिणामस्वरूप अनेक जन्मों तक माया की

दासता की शृंखला गले में डाले हुये नीच योनियों में बार-बार भटकता है। यह अच्छी स्थिति तो नहीं। कहां मनुष्य का श्रेष्ठ प्राणी का पद और कहां नीच योनियों में कैद होना। विचार किया जाये कि आशा-तृष्णा और मोह-माया के विचार मनुष्य को किस नीच स्थिति तक पहुँचाते हैं! उसे कितनी गिरावट में ला फेंकते हैं!

सन्त महापुरुष न केवल भक्ति का पैवन्द लगा कर आम संसारियों के स्तर से ऊपर उठाते और गुरुमुख के पद पर पहुँचाते है, प्रत्युत साथ ही साथ गुरुमुखों के विचारों की कांट-छांट भी करते हैं जिससे कि काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि हानिप्रद विचार शक्ति न पकड़ने पायें। वे सदैव जीवों को मोह-माया से मुक्त देखना चाहते हैं और जीवों को उनकी अधीनता से मुक्त करते हैं। महापुरुषों का संसार में आना ही केवल इसीलिये होता है कि जो संस्कारी आत्मायें और जिज्ञासु भक्ति एवं परमार्थ के इच्छुक हैं, वे उन्हें माया की अधीनता से मुक्त करके भक्ति की शिक्षा देते, हर प्रकार से उनकी अशुभ संस्कारों से रक्षा करते और जिज्ञासुओं का लक्ष्य तक पथ-प्रदर्शन करते हैं ताकि प्रकृति ने मनुष्य को जो उच्च पद श्रेष्ठ प्राणी का प्रदान किया है, मनुष्य वास्तव में उस पद का अधिकारी बन सके। यह महापुरुषों का संसार पर महान् उपकार है जिससे उऋण नहीं हुआ जा सकता।

वैसे अपने यत्न से भक्ति-परमार्थ के उच्चतम लक्ष्य तक यदि कोई पहुँचना चाहे, तो अत्यन्त कठिन है। विचार किया जाये कि संसार में कितने मनुष्य होंगे जो इस सर्वोत्तम तथा सर्वोच्च

लक्ष्य के जानकार हैं। इस मार्ग की कठिनाइयों को समझ सकना और मार्ग में आने वाली माया और मन की बाधाओं का सामना कर सकना प्रत्येक व्यक्ति का काम नहीं। केवल सन्त महापुरुष ही इस कठिन मार्ग के वास्तविक ज्ञाता हैं और वही इस मार्ग में पग रखने वाले जिज्ञासुओं को मन और माया के आक्रमणों से बचा सकते और सब कठिनाइयों को दूर करके उसे लक्ष्य तक सुगमता से पहुँचा सकते हैं। आम संसारी मनुष्यों को तो स्वयं अपने अस्तित्व तक का पता नहीं; वे दूसरों का पथ-प्रदर्शन क्या करेंगे अथवा अपनी समझ से परमार्थ के उच्चतम लक्ष्य का पता क्या पा सकेंगे? कदापि नहीं।

इसमें संशय नहीं कि मनुष्य का दर्जा बड़ा ऊँचा है। सब ग्रन्थों और शास्त्रों ने तथा सन्तों, महापुरुषों और अवतारों ने भी मनुष्य जीवन की बार-बार महिमा की है। सब ने यही कहा है कि मनुष्य को चौरासी लाख योनियों में सर्वोच्च स्थान प्राप्त है, परन्तु उसका यह पद तभी बना रह सकता है जबकि वह मालिक की ओर प्रवृत्त हो अन्यथा नहीं।

॥ दोहा ॥

लाख चौरासी योनि में, मानुष देह प्रधान।
बिना भजन भगवान के, चली अकारथ जान॥

अर्थः—चौरासी लाख योनियों में मनुष्य जीवन ही श्रेष्ठ और उत्तम है। किन्तु यही जीवन यदि मालिक की भजन-भक्ति के बिना व्यतीत होता है, तो मानो व्यर्थ जा रहा है।

मनुष्य जीवन अत्यन्त मूल्यवान और दुर्लभ है। अत्यन्त

सौभाग्य से ही जीवात्मा को मनुष्य-तन प्राप्त होता है, अतएव उसका उचित मान करना भी मनुष्य का कर्त्तव्य है। इस अमूल्य जीवन की वास्तविक उपयोगिता यही है कि इसे शरीर-इन्द्रियों की तुष्टि में व्यय न करके इसमें मालिक की भजन-भक्ति की कमाई की जाये। कुछ लोग जीवन की श्रेष्ठता इस बात में समझते हैं कि बहुत धन कमा लिया जाये; सम्पत्ति, सम्मान और उच्च पद प्राप्त किया जाये; संसार में शक्ति अथवा ख्याति प्राप्त की जाये अथवा अधिक से अधिक ऐश्वर्यभोग उपलब्ध कर लिये जायें। किन्तु विचार किया जाये कि ये सब पदार्थ तो नश्वर और अनित्य हैं। न ये मनुष्य का साथ दे सकते हैं, न ही इन से आत्मा की कुछ भलाई होती है।

संसार में बड़े-बड़े प्रसिद्ध व्यक्ति हुये; राजा और महाराजा हुये, जिनके पास शक्ति, साम्राज्य और धन सब कुछ था; मान-सम्मान और पद प्राप्त था। उनके पास किसी वस्तु की कमी न थी, परन्तु वे कहां हैं? समय ने उनके चिन्ह तक मिटा दिये। उनका असत् मान और राज्य—सब धूल में मिल गये। आज उनका नाम तक कोई नहीं लेता। कारण यह कि उन्हें नश्वर वस्तुओं का भरोसा था। वे वस्तुयें नष्ट हो गईं, तो उनके नाम भी मिट गये। किन्तु उनकी तुलना में कुछ लोग वे हैं, जिन्होंने मालिक की भक्ति और शुभकर्मों को अपने जीवन की पूंजी समझा। उनके नाम मर जाने के बाद भी जीवित हैं। उनके स्मारक आज तक संसार में विद्यमान हैं। जहां सम्राटों के चिन्ह तक मिट गये, वहां उन शुभकर्मा मनुष्यों के नाम इतिहास के पृष्ठों में चमक रहे हैं। लोग आज तक उनके नाम की पूजा करते हैं और रहती दुनिया तक करते रहेंगे।

सन्तों का कथन है:—

॥ शेअर ॥

बस नामवर बज़ेरे-ज़मीं दफ़्न करदा अंद ।
कज हस्ती अश बरूए-ज़मीं यक निशां नमांद ॥
ज़िंदस्त नामे फरुख नौशेरवां बा-अदल ।
गरचे बसे गुज़श्त कि नौशेरवां नमांद ॥

शेख़ सादी साहिब

अर्थ:—अनेक बड़े-बड़े ख्याति-प्राप्त लोग धरती के नीचे दबे पड़े हैं । मृत्यु को प्राप्त हो जाने के बाद उनका नाम तक संसार में शेष न रहा । हां ! सम्राट नौशेरवां का नाम उसके न्याय और शुभकर्मों के कारण आज तक अमर है । यद्यपि बहुत समय बीत चुका कि नौशेरवां संसार में नहीं रहा, परन्तु उसकी नेकी और सच्चाई की याद अब तक विद्यमान है ।

नौशेरवां का नाम विख्यात हुआ तो इसलिये कि उसने मालिक की भक्ति और शुभकर्मों में चित्त लगाया, अन्यथा यूं तो उससे भी बड़े-बड़े प्रसिद्ध सम्राट जगत् में हुये, जिनके नाम को कोई पूछने वाला भी नहीं । संसार में सच्चा मान-सम्मान केवल उन्हीं को मिलता है, जो मनुष्य जीवन का सदुपयोग करते और उससे मालिक की भक्ति का काम लेते हैं । शरीर और इन्द्रियों की तुष्टि में जीवन व्यतीत करने वाले मर-मिटते हैं, परन्तु नेकी, सच्चाई और भक्ति में चित्त लगाने वाले सदैव अमर रहते हैं ।

सन्त महापुरुष इसीलिये बार-बार उपदेश करते हैं कि मनुष्य जीवन की कद्र करो ताकि तुम मालिक की भक्ति की

सच्ची कमाई करके वास्तविक अर्थों में श्रेष्ठ प्राणी कहलाने के अधिकारी बन सको। उनके वचन हैं:—

॥ शेअर ॥

ख़ैरे-कुन ऐ फ़लां व ग़नीमत शुमार उम्र।
ज़ां पेश्तर कि बांग बर आयद फ़लां नमांद॥

शेख़ सादी साहिब

अर्थः—ऐ मनुष्य! इस जीवन को और आयु के कुछ पलों को मूल्यवान् समझ कर उस समय में शुभ कमाई कर ले। इस से पहले कि तेरे नाम की आवाज़ लगे कि अमुक व्यक्ति अब संसार में नहीं रहा, अपने परलोक का तोशा बना ले।

यह सत्पुरुषों का, सन्तों और दरवेशों का सदुपदेश है और इस उपदेश पर आचरण करने में ही मनुष्य जीवन की वास्तविक सफलता है। गुरुमुखजन सदैव सत्पुरुषों के उपदेश का आदर करते हुये भक्ति की सच्ची कमाई करते हैं; अपने जीवन को सौभाग्यशाली और सफल बना जाते हैं और वास्तविक अर्थों में श्रेष्ठ प्राणी का दर्जा पाते हैं।

JULY 1981 Regd. No MP/GUNA/5
R. NO. 13072/57 Licence No. 62

प्रेमाभक्ति, परमार्थ, रूहानियत तथा शान्ति के
विचारों को फैलाने वाला

* मासिक *

आनन्द सन्देश

पढ़िये और अपनी रूहानी प्यास बुझाईये

[१] यह मासिक पत्र श्री आनन्दपुर में तीन भाषाओं उर्दू, हिन्दी, सिन्धी तथा अंग्रेजी में SPIRITUAL BLISS भी छपता है।

[२] आनन्द सन्देश कार्यालय से प्रत्येक अंग्रेजी महीने की प्रथम तिथि को नियमपूर्वक प्रकाशित किया जाता है।

[३] आर्डर देते समय जिस भाषा में तथा जिस मास का अङ्क दरकार हो स्पष्ट लिखें।

[४] यहाँ से प्रत्येक ग्राहक को उसका अङ्क ठीक समय पर भेज दिया जाता है किन्तु यदि किसी प्रेमी को अङ्क १५ तारीख तक न पहुँचे तो अपने डाकखाने से पता करें।

[५] यदि डाकखाने से भी पता न चले तो २० तारीख के बाद आनन्द सन्देश कार्यालय को सूचित कर दें।

[६] पत्र-व्यवहार करते समय अपने चिट नम्बर का हवाला देना आवश्यक है।

[७] सब प्रकार का पत्र-व्यवहार नीचे लिखे पते से करें।

आनन्द सन्देश कार्यालय
पो० श्री आनन्दपुर जिला गुना (म० प्र०)
PIN 473--338